# जीवन क्रांति के सूत्र

परमगुरु ओशो के श्री चरणों में समर्पित

—स्वामी शैलेन्द्र सरवती

की प्रस्तुति


कुमाशपुर–दीपालपुर रोड
जिला: सोनीपत, हरियाणा 131021

+91 7988229565
+91 7988969660
+91 7015800931

# भूमिका

दो तरह के विद्यार्थी होते हैं, वे कभी प्रश्न नहीं पूछते। एक वे जिनकी समझ में पूरा पाठ आ गया और एक वे जिनको कुछ भी समझ में नहीं आया। जिनकी समझ में कुछ आ गया और कुछ रह गया, उनके मन में अवश्य प्रश्न उठते हैं और उठने भी चाहिए। जिनकी ज्ञान की प्यास अधूरी है वह पूरी होने ही चाहिए। सभी प्रश्नों के उत्तर मिलने ही चाहिए।

हमारी सारी इंद्रियां, मन और हृदय बहिर्मुखी हैं। इसलिए उनमें उठने वाले प्रश्न भी बाह्य–संसार विषयक ही होते हैं। जिनके उत्तर खोजना सरल बात है। किन्तु हमारी चेतना में उठने वाले प्रश्न अत्यंत कठिन होते हैं। उनके उत्तर वही ज्ञानी दे सकता है जो अपनी चेतना, अपनी आत्मा से रू–ब–रू हो चुका हो। आध्यात्मिक मार्ग पर चलकर जो मंजिल को पा चुका हो, ऐसा व्यक्ति ही उन प्रश्नों को हल कर सकता है। संबुद्ध सद्‌गुरुशैलेन्द्र जी ऐसे ही आध्यात्मिक शिखर पुरुष हैं, जो स्थित प्रज्ञ हैं और परमात्म–स्वरूप हो चुके हैं।

प्रस्तुत पुस्तक प्रश्नोत्तर शैली में है। साधकों ने अपने अंतर्तम में उठने वाले संदेहों को सहज रूप में व्यक्त किया है और शैलेन्द्र जी ने अपने अनुभवों को शब्दों में पिरोकर उनके संदेहों का शमन किया है। दोनों सहज स्फूर्त हैं। कहीं कोई बनावट या दिखावट नहीं है। ओशो अनुज  शैलेन्द्र जी, परमगुरु ओशो की ही शैली में बोलते हैं। वे गहरे से गहरे प्रश्नों का उत्तर छोटी–छोटी बोध कथाओं और मुल्ला नसरुद्दीन के चुटकुलों में ऐसे समाहित करते हैं कि श्रोता या पाठक के गले में सहज ही उतर जाते हैं।

अनुभव तो जीवन में सभी को होते हैं किन्तु यक्ष का सनातन उत्तर यही है कि अनुभव हारता चला जाता है और आशा जीतती चली जाती है। अनुभव से आदमी कुछ सीखता ही नहीं। वह नई–नई आशाओं के सहारे जीता है और भौतिक पदार्थों से अपने जीवन को भर लेता है।  शैलेन्द्र जी कहते हैं कि वे लोग भाग्यशाली हैं जो बाहर की सफलताएं जुटाने के बावजूद भीतर के खालीपन को महसूस करते हैं। वे कहते हैं कि बस यहीं से क्रांति की शुरुआत होती है। वे अपने प्रवचनों में क्रांति के सूत्र

भी देते जाते हैं। उनका कहना है कि तथातथित आस्तिक व्यक्ति ही ध्यान के मार्ग पर चले, ऐसा नहीं है। बल्कि तथाकथित नास्तिक या वैज्ञानिक बुद्धि वाला व्यक्ति ज्यादा आसानी से ध्यान में डूब सकता है, क्योंकि ध्यान एक विज्ञान है– आत्मा का विज्ञान; चेतना का विज्ञान; साइंस ऑफ दि सोल।

जैसे देह–विज्ञान या मनोविज्ञान है, ऐसे ही आत्म–विज्ञान भी है। ' मैं कौन हूं' इसकी पहचान करना ही आत्म–विज्ञान है। वे कहते हैं प्रार्थना भीख नहीं बल्कि परमात्मा के प्रति अहोभाव है। अधिकांश व्यक्ति प्रार्थना के माध्यम से परमात्मा के सामने भीख का कटोरा ही दिखाते रहते हैं। बल्कि परमात्मा ने जो हमें दिया है उसके प्रति धन्यवाद से भरना ही प्रार्थना है। ओंकार में डूबना प्रार्थना है।–

कोलाहल नस नस में भर गया, निचोड़ दो।
आवाजो, आज मुझे एकाकी छोड़ दो।

आप बड़ी सहजता से कह देते हैं कि धर्म कोई मजहब या संप्रदाय नहीं बल्कि आनंदपूर्ण जीवन जीने की कला है। और कलाकार गुरु ही वह कला सिखा सकता है। गुरु कभी बांधता नहीं। जो मुक्त करे वही सद्‌गुरु है।

–मस्तो बाबा

# अनुक्रम

## मनोकामना पूर्ति



## बाजत अनहद ढोल रे!



## ओशो का विराट स्वप्न



## शांति पाने का शार्टकट



## समस्याओं का समाधान

# मनोकामना की पूर्ति

1

# दुख-मुक्ति की मनोकामना

**प्रश्न- मेरे जीवन में मुसीबतों के पहाड़, कठिनाईओं के गड्ढे, दुखों के बादल और अभिशापों की बरसातें हैं। मैं जितनी समस्याएं सुलझाऊं, उससे और ज्यादा उलझनें पैदा हो जाती हैं। मैं अनेक साधुओं, पंडितों व ज्योतिषियों की शरण जा चुका हूं किंतु कुछ लाभ न मिला। मैंने सुना है कि सच्चे संतों के आशीष से सब कुछ संभव है। मुझे पूर्ण आशा, अपेक्षा एवं विश्वास है कि आप ही मुझे दुख-मुक्त करेंगे। अतः कृपया आशीर्वाद दें कि मेरी मनोकामनाएं पूरी हों।- रामप्रसाद विश्वास**

ओशो शैलेन्द्र- राम प्रसाद विश्वास, मैं तुम्हें महाभारत की एक छोटी सी कहानी सुनाता हूं- पांचों पाण्डव बंधु जंगल में भटक रहे थे। कुछ दिन तक भूखे-प्यासे रहना पड़ा, यहाँ तक कि पीने को पानी भी न मिला। फिर एक तालाब के किनारे वे पहुंचे। जब वे पानी पीने के लिए झुके तभी एक यक्ष प्रगट हुआ, और उसने कहा कि इस तालाब पर मेरा कब्जा है; जब तक मेरे सवालों का ठीक-ठीक जवाब न दोगे, मैं पानी न पीने दूंगा।

आपने सुना होगा एक शब्द- 'यक्ष प्रश्न' वह इसी कहानी से शुरू हुआ। कठिन प्रश्न को हम कहते हैं यक्ष प्रश्न। यक्ष ने पूछा युधिष्ठिर से कि बताओ दुनिया का सबसे बड़ा चमत्कार क्या है?
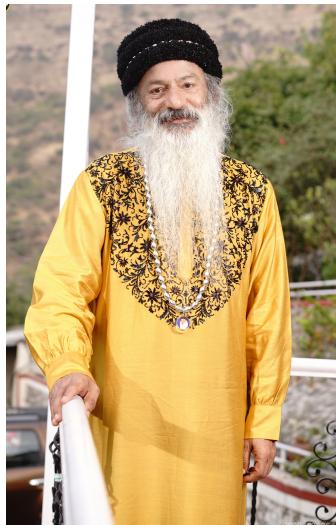
युधिष्ठर ने जो उत्तर दिया उससे यक्ष संतुष्ट हुआ और उसने पाण्डवों को पानी पीने की इजाजत दी। जानते हो युधिष्ठर ने क्या कहा था! युधिष्ठर ने कहा था कि दुनिया का सबसे बड़ा चमत्कार यही है कि आदमी अपने अनुभवों से कुछ सीखता नहीं; मनुष्य अपने अनुभवों से कोई सबक गृहण करता ही नहीं; उसकी आशा जीतती चली जाती है, अनुभव हारता चला जाता है।

ओशो कहते हैं– प्रज्ञावान आदमी का लक्षण है, जो अपने अनुभव की सुने, आशा और अपेक्षाओं की नहीं; और मूढ़ आदमी का लक्षण है, वह अपनी आशा, अपने विश्वास, अपने सपने, अपनी मनोकामनाओं की सुनता है। जिंदगी भर के अनुभवों को वह झूठा कर देता है, और भविष्य की कल्पनाओं को सत्य मानकर जीता है।

तुम कहते हो राम प्रसाद कि अनेक साधुओं, पण्डितों, व ज्योतिषियों के पास जा चुका हूं, किन्तु कुछ लाभ न मिला। अब तुम चले आये मुझसे आशीर्वाद मांगने, तुम वही चमत्कार कर रहे हो जिसकी तरफ युधिष्ठर ने यक्ष की ओर इशारा किया था। तुम कुछ सीखे कि नहीं सीखे? पता नहीं कितने लोगों के चरण पकड़ चुके होंगे, कितने लोगों से आशीर्वाद ले चुके होंगे.... कुछ हुआ तो नहीं; कुछ थोड़ी तो अकल आने दो। कुछ थोड़ी तो सूझ–बूझ जन्मने दो।

अपने श्रम और अपनी साधना से कुछ होगा, किसी संत के आशीष से न होगा। जीवन में क्रांति के लिए, आत्म–रूपांतरण के लिए तुम्हें कुछ करना होगा। मगर तुम मुफ्त में चाहते हो, यह तुम्हारा आलस, तुम्हारा तमस है, कि कोई रख दे सिर पर हाथ और सब हो जाए! और जिन मनोकामनाओं को तुम पूरी करने मेरे पास चले आये हो, वे ही मनोकामनाएं दुख का कारण हैं। गौतम बुद्ध कहते हैं– तृष्णा दुष्पूर है। वासना कभी पूरी होती ही नहीं; और यही दुख का मूल है। तुम कह रहे हो दुखों के गुड्ढों से छुटकारा पाने की बात, तथा अपने मन की कामनाओं को तुम और फैला रहे हो, ज्यादा बढ़ा रहे हो, यूं छुटकारा कभी होने वाला नहीं। तुम कहते हो बहुत कठिनाईयों के गड्ढों में गिरे, बहुत गड्ढे नहीं एक ही गड्ढा है। वह है मनोकामना का गड्ढा। जितने तुम वासनाओं में जिओगे, उतना ही दुख घटित होगा। हम बार–बार उन्हीं–उन्हीं गड्ढों में गिरते हैं। हम इतने मूर्च्छित हैं कि कुछ सीखते ही नहीं।

मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन के बारे में। रात बारह बजे शराब पीए सड़क पर पड़ा हुआ था। उठते नहीं बन रहा था। एक अजनबी आदमी वहाँ से निकला। वह एक ईसाई मिशनरी था– समाज सेवक! उसने कहा मैं तुम्हारी कुछ मदद करूं? नसरुद्दीन ने कहा हाँ! मेरा

मकान पहली मंजिल पर है। मुझे हाथ पकड़कर ऊपर ले चलो। उस ईसाई मिशनरी ने सोचा कि ठीक, सेवा का मौका मिल रहा है, और सेवा से ही तो स्वर्ग मिलता है। धन्यवाद ऐसे लोगों का जो सेवा का मौका देते हैं। हाथ पकड़ के वह नसरुद्दीन को चढ़ाकर ले गया ऊपर। फिर उसके मन में ख्याल आया कि इसकी पत्नी दरवाजा खोलेगी, वो कहीं ये न सोचे कि मैं भी इसका संगी–साथी हूं, कि मैंने ही इसको शराब पिलाई है; फालतू बहस होगी, बाद–विवाद होगा, तो उसने जल्दी से दरवाजा खोलकर नसरुद्दीन को अंदर धक्का दिया, और भागा ताकि कुछ बातचीत किसी से न करना पड़े।

नीचे आकर वह हैरान हुआ, एक बिल्कुल वैसा ही आदमी और वहाँ पड़ा हुआ था नीचे. .... और वह हाथ से इशारा कर रहा था, कि मदद करो। मिशनरी थोड़ा चौंका..... देखने में वैसा ही लग रहा है, लेकिन रात का अंधेरा है, हो सकता है दो जुड़वा भाई हों! यह भी शराबी, वह भी शराबी!!

उससे पूछा– कहाँ रहते हो? उसने इशारा किया– पहली मंजिल पर। ईसाई मिशनरी ने सोचा कि चलो सेवा का एक मौका और मिल रहा है, इसका उपयोग कर लिया जाए। बामुश्किल घसीट के फिर ऊपर ले गया। उसने पूछा– कौन सा घर है? शराबी ने कहा– यही घर है। मिशनरी ने फिर उसे धक्का दिया, दरवाजा खोलकर जल्दी–जल्दी सीढ़ियों से उतरकर नीचे आया। देखा एक तीसरा आदमी और पड़ा है।

अब तो यह मानना भी मुश्किल हो गया कि तीन–तीन जुड़वां भाई एक जैसे होंगे– तीनों पियक्कड़! फिर उसने सोचा कि हो सकता है..... कभी–कभी असंभव भी हो जाता है। पूछा– क्या चाहते हो? इस तीसरे आदमी से तो हाथ उठाते भी नहीं बन रहा था। कुछ बोलते भी नहीं बन रहा था। बड़ी दुर्गति की स्थिति थी। मिशनरी ने पूछा– तुम्हें भी ऊपर जाना है पहली मंजिल पर? उसने धीरे से कहा– हाँ! इस तीसरे आदमी को ले जाना बड़ा कठिन था, उससे चलते भी नहीं बन रहा था। ऐसा लगता कि कुछ फ्रैक्चर–व्रैक्चर हो गये थे। बड़ी मुश्किल से पीठ पर लादकर उसको ले गया, दरवाजा खोजा, अंदर धकाया। फिर भागा कि कहीं कोई चौथा न मिल जाए......!

और वही हुआ जो होना था, एक चौथा आदमी वहाँ इंतजार कर रहा था। करीब–करीब अधमरी हालत में। अब मिशनरी थोड़ा चौंका कि कहीं मैंने तो कोई नशा नहीं किया। यह मैं क्या देख रहा हूं? कोई सपना तो नहीं देख रहा हूं? मैं जागा हुआ हूं या किसी नींद में हूं? कहीं पागल तो नहीं हो गया?

उसने कहा– मेरे भाई, तुम्हारे जैसे तीन आदमियों को पहली मंजिल पर छोड़ के आया

हूं; तुम चौथे आदमी हो।

नसरुद्दीन ने कहा– नहीं; मैं वही.... एक ही आदमी हूं।

मिशनरी ने पूछा– तुम मुझसे पहले नीचे कैसे पहुंच जाते हो?

नसरुद्दीन ने कहा– भले मानुष, तुम जिसे घर का दरवाजा समझ रहे हो, वह लिफ्ट का दरवाजा है। तुम मुझे धक्का मारते हो, मैं भड़ाम से नीचे गिरता हूं।

मिशनरी ने पूछा– तुमने तीन बार से कहा क्यों नहीं?

नसरुद्दीन ने कहा– मुझे तुम जैसे समाज सेवक से बड़ी आशा–अपेक्षा थीं, और पूर्णविश्वास था, कि शायद तुम दुबारा ऐसा न करो।

राम प्रसाद विश्वास, ये जो आशाएं, अपेक्षाएं और विश्वास हैं, यही सारे उपद्रव की जड़ हैं। तुम्हारी संसार से आशा लगी हुई है। और यही कारण है कि तुम अध्यात्म की तरफ नहीं मुड़ पाते। तुम्हारी वासनाएं पूरी होती नहीं, तुम उन्हीं को और अधिक फैलाते चले जाते हो। फिर जीवन में दुख–ही दुख हो जाता है। मैं एक गीत मैं पढ़ रहा था। करीब–करीब सभी आदमियों की जिंदगी की कहानी वैसी ही है–

मैं नीर भरी दुख की बदली!

स्पंदन में चिर–निस्पंद बसा, क्रंदन में आहत विश्व हंसा,

नैनों में दीपक से जलते, पलकों में निर्झरिणी मचली।

मैं नीर भरी दुख की बदली!

मैं क्षितिज–भृकुटी पर घिर धूमिल, चिंता का भार बनी अविरल,

रज–कण पर जल–कण हो बरसी, नवजीवन–अंकुर बन निकली।

मैं नीर भरी दुख की बदली!

पथ को न मलिन करता आना, पद–चिह्न न दे जाता जाना,

सुधि मेरे आगम की जग में, सुख की सिरहन हो अंत खिली।

मैं नीर भरी दुख की बदली!

विस्तृत नभ का कोई कोना, मेरा न कभी अपना होना,

परिचय इतना इतिहास यही, उमड़ी कल थी मिट आज चली।

मैं नीर भरी दुख की बदली!

यदि तुम इन्हीं–इन्हीं गड्ढों मे गिरते रहोगे, तो यही तुम्हारी कथा होगी– परिचय इतना इतिहास यही, उमड़ी कल थी मिट आज चली। मैं नीर भरी दुख की बदली!

लेकिन याद रखना यह हमारी नियति नहीं; इसे हम बदल सकते हैं। कैसे बदलेंगे–

ध्यान में डूबकर। न तुम सुख के सफेद बादल हो, न तुम दुख के काले बादल हो, तुम तो वह आकाश स्वरूप साक्षी चैतन्य हो, जिसमें बादल आते–जाते हैं।

ओशो कहते हैं– अपने उस आकाश रूपी चैतन्य को पहचानो। वह साक्षी है बादलों का। माना की सुख आते, माना की दुख आते; चले जाते, लेकिन वह आकाश अस्पर्शित, और कुंवारा का कुंवारा बना रहता है।

धर्म की सारी साधना उस साक्षी को पकड़ने की है। बादलों से ध्यान को हटाओ। अपने स्वभाव में, उस आकाश स्वरूप में, शून्यता में स्थिर बनो, उसमें रमो, और तब अचानक तुम दुख स मुक्त हो जाओगे। मेरे आशीर्वाद से नहीं; किसी और के आशीर्वाद से भी नहीं। व्यर्थ यहाँ–वहाँ मत भटकना। कामनाओं के प्रति जाओ। संसार के प्रति तुम्हारी वासना ही तुम्हें दुख के गड्ढे में गिराती है। यह समझ तुम्हें जगाएगी। यह विवेक तुम्हें वासना से मुक्त करेगा। फिर दूसरी कोशिश करनी होगी– अपने भीतर जागरूकता को बढ़ने दो। इतने चैतन्य हो जाओ कि सुख–दुख के विचार–भाव इत्यादि आयें–जायें और तुम चुपचाप उन्हें दूर से देखते रहो, देखते रहो..... देखते–देखते तुम द्रष्टाभाव में, साक्षी में रमने लगो। दृश्य क्या है, इससे कोई भी फर्क नहीं पड़ता; कोई भी दृश्य हो, तुम सदा ही दृश्य के साक्षी हो। साक्षी शाश्वत है। बादल आते–जाते हैं, सफेद भी, काले भी; सुख के भी, दुख के भी; अच्छे भी, बुरे भी; लेकिन तुम शाश्वत और सनातन आकाश हो। कुछ भी तुम्हें छूता नहीं; उस रहस्यमय अवस्था को जान लेना ही समाधि कहलाता है। क्योंकि उसमें सब समस्याओं का समाधान हो जाता है। तब तुम कहोगे–

मैं सीमा की गोद पली, पर हूं असीम से खेली भी!
प्रिय मैं हूं एक पहेली सी!
पी–पी मैं चिर–दुख–प्यास बनी, सुख–सरिता की रंगरेली भी,
मेरा पग–पग संगीत भरा, छाया में मलय–बयार पली।
प्रिय मैं हूं एक पहेली सी!

कि मैं तुम्हें आमंत्रित करूंगा, ध्यान और समाधि में डूबने के लिए। मैं कोई आशीष नहीं दूंगा; मैं कोई चमत्कार नहीं कर सकता। लेकिन चमत्कार कैसे हो सकता है तुम्हारे भीतर उसका उपाय जरूर बता सकता हूं। माना कि तुम सीमा की गोद में पले हो, मगर असीम से खेले भी हो! छोटे से आंगन में बंधे हो, पर विराट आकाश को कभी जाना है! चाहे कितना ही भूल गए हो, तुम्हें याद दिला सकता हूं। दुख–प्यास तुम्हारी प्रकृति नहीं है। तुम

सुख–सरिता की रंगरेली हो। तुम्हारा पग–पग संगीत भरा है, ओंकार से गूंज रहा है। तुम्हारी छाया में मलय–बयार पल रही है। अंदर झांको और आनंद ही आनंद का खजाना वहाँ मिल जाएगा। वह खो नहीं गया है, केवल भूल गया है।

जो विस्मृत हो गया है, उसका स्मरण किया जा सकता है। ध्यान की एक बगिया लगानी होगी; अपनी जिंदगी को होश की एक फुलवारी बनानी होगी। प्यार की एक गंगा बहाने से यह चमत्कार घट सकता है। मेरे आशीर्वाद से नहीं तुम्हारी साधना और श्रम से यह जादू होगा। राम प्रसाद विश्वास, मा ओशो प्रिया का यह गीत स्मरण रखना–

चलो ध्यान की एक बगिया लगाएं; चलो प्यार की एक गंगा बहाएं।
उखड़ जाएं सूखे शज़र हर चमन से; चलो एक आंधी हम ऐसी उठाएं।
न मीरा को कोई राणा जहर दे; न सुकरात को कोई विष अब पिलाए।
न जीसस को सूली न ही कत्ल–ए–सरमद; न मंसूर पर कोई पत्थर चलाए।
दोबारा न हो हादसा करबला का; चलो कुछ चमत्कार ऐसा दिखाएं।
बजे बांसुरी कृष्ण की हर गली में; चलो आज राधा को सर से लगाएं।
न सिद्धार्थ भागो यहाँ रह के जागो; जो कहते हैं ओशो उसे कर दिखाएं।
चलो ध्यान की एक बगिया लगाएं; चलो प्यार की एक गंगा बहाएं।
धन्यवाद।

# 2

# आत्म क्रांति के दस सूत्र

**प्रश्न– एक मित्र ने पूछा है 5 जनवरी सन 2001 को आपकी जिंदगी में परम–ज्ञान की घटना घटी। कृपया आध्यात्मिक क्रांति के कुछ सूत्र हमें भी बताएं जो सबके काम आ सकें?**

ओशो शैलेन्द्र– नंद कुमार घनशानी, क्रांति के सूत्र तो वही के वही हैं। जिस प्रकार मेरे जीवन में क्रांति घटी, उसी प्रकार तुम्हारे जीवन में घट सकती है। सबके जीवन में घट सकती है। संक्षेप में मैं दस बिंदुओं पर चर्चा करना चाहूंगा।

सबसे पहला बिन्दु है क्रांति का, वह है – संसार से अनासक्ति। संसार से मेरा मतलब है, मन की कामनाओं से, मन की वासनाओं से। संसार से अर्थ पत्नी से नहीं, पति से नहीं, बेटे से नहीं, मकान और पेड़–पौधों से नहीं, वो जो हमारी वासनाएं हैं कि यह पा लूं, कि वह पा लूं, कि मैं यह बन जाऊं; कि वह बन जाऊं जब तक इनके प्रति वैराग्य भाव न जन्मेगा, तब तक भीतर की तरफ मुड़ना ही न होगा। इसलिए पहला क्रांति सूत्र है संसार से अनासक्ति। वह जो आसक्ति है वह टूटे। संतोष और आनंद मिल सकता है जगत में, यह आशा तुम्हारी छूटे।

दूसरा क्रांति सूत्र है तथाकथित धर्मों के जालों से मुक्ति। कुछ लोग संसार से तो मुक्त

हो जाते हैं, समझ में आ जाता है कि यहाँ तृप्ति होने वाली नहीं, लेकिन वे तुरंत दूसरे गड्ढे में गिरते हैं। इस तरफ कुंआ, उस तरफ खाई। हम जिन्हें धर्म के नाम पर जानते हैं, वे तथाकथित धर्म दूसरी उलझनों में डाल देते हैं। कुछ क्रिया–काण्ड कुछ पूजा–पाठ, ज्योतिष, तीर्थस्नान, न जाने क्या–क्या। यह करो वह करो, सत्यनारायण की कथा सुनो। फिर ग्रंथों का अध्ययन मनन, चिंतन, वाद–विदाद, बड़ा उलझाव है उनका। अंतहीन उलझाव। संसार के उलझाव से निकलना मुश्किल, उससे निकलो तो इस दूसरे उलझाव में फंस जाने की बहुत ज्यादा संभावना। इससे निकलना और भी मुश्किल। यह समझ में आ जाना कि धन, पद, यश, घर गृहस्थी इनसे आनंद नहीं मिलेगा, यह समझना आसान है। शास्त्रों के अध्ययन से, चिंतन मनन से, मंदिर मस्जिद, मूर्ति पूजा से, यज्ञ हवन से, कुछ न मिलेगा, यह समझना और भी कठिन। तो पहला सूत्र संसार से अनासक्ति, विराग का जन्म। दूसरा सूत्र धर्मों के जाल से मुक्ति।

तीसरा सूत्र है साधु–संगति। यहाँ से अध्यात्म की थोड़ी सी शुरूआत होती है। जब मूर्तियों से नहीं मिला, वह पत्थर की डूब गई; जब शास्त्रों से नहीं मिला, वह कागज की नाव हैं, आजतक कोई उनसे भवसागर पार नहीं हुआ। तब व्यक्ति जीवित गुरु की खोज में निकलता है। साधुओं की संगति शुरु होती है। निश्चित रूप से जहाँ एक सच्चा साधु है, वहाँ सौ झूठे साधु भी हैं। बड़ी खोजबीन करनी होगी, फिर बड़ा जंजाल है। बहुत समझपूर्वक कोई चले साधु–संगत में जाए खोजने...

फिर चौथा बिंदु आता है सद्गुरु से प्रीति। सद्गुरु से मिलन होता है। लेकिन जो ढूंढ़ेगा उसी का होगा। तो सद्गुरु से प्रीति लग जाए, श्रद्धा का जन्म हो। यहाँ से अब जिंदगी में एक मोड़ आना शुरु होता है। अब हम वास्तविक धर्म की तरफ चले।

पांचवा बिंदु है चेतना की जागृति। वह ध्यान साधना से होगी। और–और होश को साधो। गुरु ने जो विधि दी चैतन्यता को जगाने की, होश को बढ़ाने की; उन विधियों पर प्रयोग शुरु करो। सिर्फ गुरु को सुनने से कुछ न हो जाएगा। गुरु के चरण छूने से कुछ न हो जाएगा, गुरु के आशीष से कुछ न होगा। तुम्हें कुछ करना होगा। चेतना की जागृति।

उसके बाद छठवां बिंदु है– शांति की प्राप्ति। जो व्यक्ति जितना चैतन्य होने लगेगा, उतना ही निर्विचार, उतना ही मौन, उतना ही शून्य। भीतर सब शांत होने लगेगा।

उस शांति की प्राप्ति के बाद सातवां बिंदु है भीतर स्वर की प्रतीति। उस शून्य में एक संगीत गूंज रहा है। उसी स्वर को संतों ने ईश्वर पुकारा है। ईश्वर से मेरा तात्पर्य कहीं स्वर्ग में सिहासन पर बैठे, कहीं सात आसमानों के पास किसी सृष्टा से नहीं हैं। ईश्वर से मेरा मतलब भीतर के उस स्वर से है वह ओंकार की गूंज जिसको नानक कहते हैं 'एक ओंकार सतनाम'। जब वह सुनाई पड़ने लगे तो समाधि की शुरूआत होती है। भरोसा नहीं आता कि मेरे भीतर परमात्मा बोल रहा है। विचारों की भीड़ जब खो जाती है, शोरगुल समाप्त

होता है, तब उसकी मीठी धुन सुनाई पड़ती है।

मैंने सुनी है एक मजाक मुल्ला नसरुद्दीन के बारे में कि वह पुलिस थाने गया। थाने इंचार्ज से उसने कहा कि रिपोर्ट लिखिये। पिछले एक साल से मेरी लड़ाकू कर्कशा पहलवान पत्नी गायब है। लगता है कोई उसको उठा के ले गया। गुमशुदा है। थाने इंचार्ज ने कहा हद हो गयी, एक साल बाद तुम रिपोर्ट लिखाने आ रहे हो। पहले क्यों नहीं आये? नसरुद्दीन ने कहा मुझे अपनी किस्मत पर भरोसा ही नहीं आ रहा था कि वह लड़ाकू कर्कशा पत्नी गुमशुदा हो जाएगी। भरोसा आने में एक साल लग गया। ठीक ऐसे ही जब साधक के भीतर से विचारों की भीड़, और भावनाओं का शोरगुल, काम, क्रोध, लोभ, मोह इनका सारा उपद्रव विदा होता है, श्रद्धा आते-आते भी समय लग जाता है कि मैं इतना सौभाग्यशाली हूं। कि वह ईश्वर का स्वर मेरे भीतर सुनाई पड़ने लगा भरोसा नहीं आता। सद्गुरु के प्रति जो श्रद्धा है वही भरोसा दिलाती है। गुरु कहता है वह जो तुम्हारे भीतर गूंज़ रहा है अब उसमें डूबो, वह डूबना ही समाधि है।

आठवां बिंदु है, ईश्वर के प्रति अनुरक्ति। भीतर के स्वर को जान लिया। ओंकार को सुन लिया, सिर्फ इससे ही काम नहीं चलेगा। उसके प्रति अनुरक्ति पैदा हो, अनुराग, प्रेम पैदा हो, प्रीति पैदा हो, उस प्रीति को ही हम भक्ति कहते हैं। ईश्वर के प्रति प्रीति भक्ति है, पराभक्ति है। तो ओंकार को जानने से, सुनने से ही बात न बनेगी। जब तक उसके प्रेम में न डूबो। उसकी भक्ति में न डूबो। जो व्यक्ति भक्ति में डूबने लगा, उसके जीवन में नवां बिंदु प्रगट होगा।

नवां बिंदु है अद्वैत की अनुभूति। एक दिन वह जानेगा कि जिस ओंकार स्वरूप परमात्मा में मैं डूब रहा हूं, वह और मैं एक ही है। हम दो नहीं हैं, एक ही हैं। 'अहम् ब्रह्मस्मि' की घोषणा होगी। संबोधि घटेगी। परमज्ञान उपलब्ध हो जाएगा। तुमने पूछा है कि 5 जनवरी 2001 को मेरे जीवन में क्या हुआ? मेरे जीवन में यही घटना घटी। अद्वैत की प्रतीति हुई, कि मैं और यह सारा अस्तित्व अलग-अलग नहीं एक ही है।

फिर दसवां बिंदु है करुणा की उत्पत्ति। जिस व्यक्ति ने परमात्मा के साथ स्वयं को एक जाना, उसके भीतर एक अद्भुत प्रेम पैदा होता है। वह प्रेम ऐसा है कि उसे कोई और नाम देना होगा। प्रेम शब्द छोटा पड़ता है इसलिए हमने करुणा शब्द कहा। बड़ी 'कम्पेक्शन' पैदा होती है। क्योंकि वह देखता है कि मैं जिस प्रकार दुखों में उलझा रहा था वैसे ही दुनियां के सारे लोग दुखों में उलझे हैं। बड़ी करुणा जन्मती है, और तब वह आचार्य बनता है। उपाध्याय बनता है। बोधिसत्व बनता है। तब वह बांटना शुरु करता है जो उसने जाना है। वह दूसरों को बताना शुरु करता है। तो संक्षेप में ये दस बिंदु हैं। और पूछा है नंद कुमार घनशानी ने, वह मेरे मित्र हैं, पिछले तीस सालों से मुझे जानते हैं। उनसे एक बात और कहना चाहूंगा कि मेरे जीवन में ओशो के छोटे भाई होने के कारण दूसरा, तीसरा व चौथा चरण स्वतः घट

गए। पांचवें चरण से सीधे मेरी शुरुआत हुई। इसलिए मेरी यात्रा ज्यादा सरल थी। चूंकि मेरे मित्र ने यह सवाल पूछा है, जो लंबे अरसे से मुझे जानते हैं। वे इस बात को समझ पाएंगे। क्यों मेरे लिए यह आसान रहा। फिर से गिना दूं। दस बिंदु इस प्रकार हैं –

1. संसार से अनासक्ति
2. धर्मों के जाल से मुक्ति
3. साधु संगति
4. सद्गुरु से प्रीति
5. चेतना की जागृति
6. शांति की प्राप्ति
7. स्वर की प्रतीति
8. ईश्वर के प्रति अनुरक्ति या भक्ति
9. अद्वैत की अनुभूति
10. करूणा की उत्पत्ति

एक प्यारा गीत तुम्हें कहता हूं। जब मैंने भीतर परमात्मा के स्वर अनाहत नाद को सुना था, तब किसी कवि का यही भाव मेरे भीतर भी जन्मा।

किस स्नेह परस ने छेड़ दिया, निष्प्राण पड़ी सी वीणा को।
चिर शांत थकित चिर मौन और, चिर एकाकनी चिर क्षीणा को।
जिसके ढीले से मौन तार, झंकृत हो गाना भूल गये।
मन को मस्तक को नस–नस को, पल में सिहराना भूल गये।
जिसका मन शिथिल पड़े, जिसकी वाणी पर थे चुप के ताले।
जिसके तन पर अगणित, दुख की मकड़ी ने जाले बुन डाले।
किस स्नेह परस ने छेड़ दिया, सब तार तने झंकार उठीं।
ज्यूं अंधकार में रजनी के, ज्योत्सना–छिणां की दीवार उठी।
किस स्नेह परस ने छेड़ दिया, गानों के सागर फूट पड़े।
संगीत भरे नभ से तारे, तानों के अगनित टूट पड़े।
ध्वनि के खग उड़–उड कर फैल गये, और दसों दिशायें जाग उठीं।
अम्बर की सोई सी स्मृतियां, सुनकर ये अभिनव राग उठीं।
किस स्नेह परस ने छेड़ दिया, निष्प्राण पड़ी सी वीणा को।

वह हृदय की वीणा गूंजने लगी। ईश्वर की प्रतीति होने लगी। यहाँ ध्यान समाधि कार्यक्रम ओशोधारा में होते हैं। जिनमें उसी अंतर वीणा को छेड़ा जाता है। गुरु का स्नेह

परस, ओशो की कृपा से मेरे भीतर यह संभव हो पाया। कभी मैंने एक गीत लिखा था, और ओशो ने उसे अपने प्रवचन में उद्धृत किया था।

दिल को संवार गई, जीवन निखार गई।

प्यारी नजर ओशो की, खुशियां बौछार गई।

तुम पूछते हो कैसे हुई क्रांति, ओशो की नजर से।

दिल को संवार गई, जीवन निखार गई;

प्यारी नजर ओशो की खुशियां बौछार गई।

टूट गया सब सपना, मैं न रहा खुद अपना;

कोई हवा इस मन का दर्पण बुहार गई।

जीवन हुआ उजियारा, मिटा सकल अंधियारा;

प्रेम आंगन में दियना सा बार गई।

बांहों में उसकी छोड़ा, तैरा न भागा–दौड़ा;

नदिया ही देखो मेरी नैया को तार गई।

खुशियों की ऐसी बौछार हुई है कि ओशो की कृपा से घर ही मैकदा बन गया है। जिंदगी जलसा बन गई है। बंदा ही खुदा बन गया है। भक्त भगवान हो गया है। जीवन एक उत्सव, एक जश्न हो गया है।

कैसी चली है अब ये हवा ओशोधारा में! बंदे भी हो गए हैं खुदा ओशोधारा में!!

ना जाने क्या हुआ कि सभी झूमने लगे, हर सांस–सांस जश्न हुई ओशोधारा में!!

ना दुश्मनी का ढब है यहां न दोस्ती के तौर, दोनों का रंग एक हुआ ओशोधारा में!!

कल की न याददाश्त, न कल का कोई ख्वाब, जलसा है आज जिंदगी ओशोधारा में!!

मंजिल पे पहुंचने को दुनिया है परेशां, राहों का मजा लूट रहे ओशोधारा में!!

देखो मेरे साकी–ओशो का करिश्मा, घर–घर बना है मैकदा ओशोधारा में!!

धन्यवाद।

3

# जादू का खिलौना

**प्रश्न– दुनिया में सब कुछ पा लेने के बाद भी मैं स्वयं से अतृप्त हूं। लोग मुझे सफल व्यक्ति मानते हैं। मगर मैं भीतर ही भीतर अपने आप को असफल जानता हूं। मेरी मानसिक असंतुष्टि का कारण क्या है? यह भी मुझे स्पष्ट नहीं है। एक खालीपन सा लगता रहता है, मेरी समस्या कैसे हल होगी?**

**स्वामी शैलेन्द्र सरस्वती** – ओम प्रकाश शर्मा, तुम सौभाग्यशाली हो कि बाहर की सफलताएं जुटाने के बावजूद भीतर के खालीपन को, शून्यता को महसूस कर पा रहे हो। इसे दुर्भाग्य मत समझना। यह सौभाग्य की घड़ी है। यहीं से क्रांति की शुरुआत होती है। संसार की तरफ दौड़ती हुई वह जो बहर्मुखी चेतना थी, वह पहली बार भीतर की तरफ मुड़ती है। इसलिए अक्सर अमीर समाज धार्मिक हो पाते हैं, गरीब समाज धार्मिक नहीं हो पाते। जिसको भरपेट रोटी नहीं मिल पाई, जिसके पास रहने के लिए ठीक मकान नहीं है, वह सोचता है कि जिस दिन ठीक मकान बन जाएगा उस दिन मैं संतुष्ट हो जाऊंगा। अभी मेरे पास पहनने को अच्छे कपड़े नहीं हैं, या बच्चों को ठीक शिक्षा नहीं दिला पा रहा हूं, इसलिए तकलीफ में हूं। जिस दिन ये इंतजाम कर लूंगा उस दिन मैं बहुत सुखी हो जाऊंगा।

यह तो अमीर होकर पता चलता है कि बाहर की सब व्यवस्थाएं भी सुचारू रूप से चलने लगें, तो भी शांति नहीं मिलती। सुविधा एक बात है, शांति बिल्कुल दूसरी बात है। सुख के साधन जुटाना एक बात है, आनंद की साधना एकदम अलग बात है। मकान के बड़े हो जाने से कोई आंतरिक विराटता की अनुभूति नहीं हो जाएगी। जो झोपड़ी में चिंतित था, वह महल में भी परेशान रहेगा। जो अशांत आदमी पहले बैलगाड़ी चलाता था, वही अशांत आदमी अब कार चलाने लगेगा। वह अशांत आदमी अपोलो यान चलाने लगे तो भी अशांति नहीं मिट जाएगी। हाँ! बैलगाड़ी की जगह अपोलो यान आ गया लेकिन आदमी तो वही का वही है– बेचैन, महत्वाकांक्षी, प्रतियोगी चित्त वाला। उसकी चेतना में तो कुछ परिवर्तन हुआ ही नहीं।

परिस्थिति की बदलाहट से आत्म–रूपांतरण नहीं होता। लेकिन यह तथ्य भी समृद्ध होकर ही पता चलता है। धनी होकर ज्ञात होता है कि निर्धनता नहीं मिटी। इसलिए अक्सर ऐसा हुआ है, कि जो लोग बहुत समृद्ध हुए उनके जीवन में आध्यात्मिक क्रांति घटी। महावीर और जैनों के चौबीसों तीर्थंकर, गौतम बुद्ध, राजा जनक, राम और कृष्ण; ये सारे लोग राजघरानों से क्यों आते हैं? क्योंकि महल में रहकर ही पता चलता है कि महल तृप्ति नहीं दे सकता। गरीब आदमी तो आशा और विश्वास में जीता है कि कल समस्याएं हल जो जाएंगी। समृद्ध व्यक्ति को पता चलता है कि बाहर की सम्पन्नता मेरे भीतर की विपन्नता को नहीं मिटा सकती। बाहर मैं कितना ही सामान इकट्ठा कर लूं, कितना ही बड़ा बैंक बैलेंस इकट्ठा कर लूं, बाहर की संपदा मेरे मन की विपदा को समाप्त नहीं कर सकती। वह खालीपन ज्यों का त्यों मौजूद रहता है। तब बड़ी विडंबना की स्थिति निर्मित होती है– यह भी साफ पता नहीं चलता कि हम क्या करें? क्या तलाशें? आखिर पाना क्या है?

तुमने पूछा है कि मेरे मानसिक असंतुष्टि का कारण क्या है? यह भी मुझे स्पष्ट नहीं। वास्तव में हम क्या चाह रहे हैं– यह भी स्पष्ट नहीं। हम क्यों चाह रहे हैं– कुछ समझ नहीं आता। जो–जो चाहा जा सकता था, वह उपलब्ध हो गया, दुनिया की नजरों में सफल हो गये, और फिर भी कुछ चाहत बनी हुई है। साफ–सुथरी नहीं, समझ भी नहीं आ रही।

मा ओशो प्रिया कि लिखी एक गजल तुम्हें सुनाऊं–

जाने किसकी तलाश जारी है, क्या खूब ख्वाहिश हमारी है?<br>
किसी सिंदूर से कभी न भरी, मांग की मांग सदा क्वारी है।।<br>
इस बड़ी दुनिया में जिससे भी मिले, वही इंसान एक भिखारी है।<br>
भरी कितनी मगर ये खाली रही, दिल तो एक जादू की पिटारी है।।<br>
नशा–ए–जुस्तजू में चलती हुई, चुक गई जिंदगी बेचारी है।<br>
पैर तो थक के चूर–चूर हुए, आई नहीं हसरतों की बारी है।।

वह जो मांगने वाला चित्त है, उसकी मांग कभी भरती ही नहीं, किसी सिंदूर से नहीं भरती। झोली खाली की खाली रहती है।

जाने किसकी तलाश जारी है, क्या खूब ख्वाइश हमारी है।

किसी सिंदूर से कभी न भरी, मांग की मांग सदा कुंवारी है।

इस भरी दुनिया में जिससे भी मिले, वहीं इंसान एक भिखारी है।

....कोई छोटा भिखारी, कोई बड़ा भिखारी। छोटे भिखारी एक–दो रुपये मांगते हैं, बड़े भिखारी लाखों–करोड़ों मांग रहे हैं। भिखमंगे सब हैं– बड़े–बड़े सिंकदर और हिटलर भी; बड़े–बड़े सम्राट, प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति भी।

मैंने सुना है कि प्रेमिका ने अखबार पढ़ते हुए अपने सम्पन्न प्रेमी को खबर सुनायी–'एक दरिद्र आदमी ने साईकिल के बदले अपनी प्रेमिका को बेच डाला। क्या तुम भी मेरे साथ ऐसा नीचतापूर्ण कृत्य कर सकते हो?'

अमीर प्रेमी बोला–'नहीं, कभी नहीं। मैं उस जैसा धूर्त नहीं, जो साईकिल के बदले अपनी प्रेमिका को बेच दे। कार से कम पर तो मैं बात ही नहीं करूंगा।'

इस भरी दुनिया में जिससे भी मिले, वहीं इंसान एक भिखारी है।

भरी कितनी मगर ये खाली रही, दिल तो एक जादू की पिटारी है।

नशा–ए–जुस्तजू में चलती हुई, चुक गई जिंदगी बेचारी है।

पैर तो थक के चूर–चूर हुए, आई नहीं हसरतों की बारी है।

इस जादू की पिटारी का चमत्कार देखो– दिल की हसरतें चुकती ही नहीं। पैर थक जाते हैं, अरमान नहीं थकते। उम्मीदें पूरी नहीं होतीं, आदमी पूरा हो जाता है, समाप्त हो जाता है। इच्छाएं खत्म होने के पहले ही लोग खत्म हो जाते हैं। जिसे यह समझ आ जाए, उसके जीवन में भीतर की तरफ मुड़ना घटित होता है। प्रज्ञावान व्यक्ति की जिंदगी में ही अंतर्यात्रा आरंभ होती है।

ओशो द्वारा कही गई एक बड़ी प्यारी बोध–कथा सुनो–

एक भिखारी सुबह–सुबह एक सम्राट के द्वार पर पहुंचा। एक विचित्र–सा भिक्षापात्र उसके हाथ में था। उसने सम्राट से कहा सिर्फ एक शर्त पर मैं भीख स्वीकार करूंगा। यदि आप मुझे आश्वासन दें कि मेरे भिक्षापात्र को पूरा का पूरा भर देंगे। सम्राट को हंसी आ गई, उसने कहा– तुम शायद पहली बार राजमहल आए हो। मैं तुम्हारे भिक्षापात्र को अनाज से क्या, हीरे–जवाहरातों से भर सकता हूं। भिखारी ने कहा कि एक बार आप फिर सोच लीजिए। अगर वचन दिया है तो फिर पूरा करना पड़ेगा, मैं हटूंगा नहीं यहाँ से जब तक कि पात्र भर न जाए। सम्राट ने अपने वजीरों को आज्ञा दी– जाओ हीरे–जवाहरत लाओ, और इसके भिक्षापात्र में डालो। यह गरीब भी आज जरा प्रसन्न और चकित हो जाए। आज इसे

अन–अपेक्षित मिल जाए!

वह भिखारी व्यंग्यात्मक रूप से मुस्कुराया।

हीरे–जवाहरात लाए गये, उसके पात्र में डाले गये। लेकिन एक विचित्र घटना घटी, रत्नादि डालते ही सब गायब हो गये। पात्र खाली का खाली रह गया!, लेकिन सम्राट के अहंकार को चोट लग गई। वचन दिया है कि पूरा भरूंगा..... और हीरे–जवाहरात बुलवाए गये..... होते–होते दोपहर तक राजमहल के खजाने खाली होने लगे। हीरे–जवाहराते समाप्त। राजा ने कहा कोई बात नहीं, सोना–चांदी लाओ। यह मेरी इज्जत का सवाल है, मेरे द्वार से कभी कोई खाली नहीं गया। सोना–चांदी डाला जाना लगा, लेकिन वह भिक्षापात्र बड़ा विचित्र था, जो भी उसमें डालो, सब विलीन हो जाता। शाम होते–होते सम्राट थक गया। भिखारी के चरणों में गिरकर रोने लगा कि यह कौन सा जादू है? यह कौन सा चमत्कार है? ये सारी चीजें कहाँ गायब हो गईं, कहाँ चली गईं?

भिखारी ने कहा चमत्कार कुछ भी नहीं, मैं तुम्हें बताता हूं, कैसे यह भिक्षा पात्र मैंने कैसे बनाया है। एक दिन एक कब्रिस्तान से गुजर रहा था, वहाँ एक आदमी की खोपड़ी पड़ी मिल गई। मैंने उसे उठाकर, घिसकर साफ किया, उसी से यह भिक्षापात्र बनाया। इसलिए देखने में थोड़ा अजीब–सा लगता है। मैं गरीब आदमी हूं। पीतल या तांबे का बर्तन खरीदने की भी मेरी हैसियत नहीं। उस खोपड़ी को ही घिसकर मैंने यह बर्तन–सा बना लिया है। इस खोपड़ी में कुछ भी डालो यह भरती ही नहीं।

सम्राट ने कहा यह तो बड़ी चमत्कारी खोपड़ी है।

भिखारी ने कहा : नहीं राजन्, यह चमत्कारी नहीं है। साधारण खोपड़ी है। दुनिया में कब किसकी खोपड़ी भरी है! आप आंख बंद करके अपनी खोपड़ी के भीतर देखो, क्या वह भर गई? सम्राट ने आंखें बंद कीं। भिखारी ने कहा, गौर से देखो– क्या तुम्हारे भीतर अभी भी भिखमंगापन नहीं है? क्या तुम नहीं चाहते कि तुम्हारा साम्राज्य और बड़ा हो, कि तुम्हारी सेनाएं और सशक्त हों, कि तुम्हारी विजय पताका और दूर–दूर तक फहराये, कि तुम्हारे राज्य की सीमाएं विस्तीर्ण हो जाएं?

सम्राट बोला– चाहता हूं, निश्चित रूप से चाहता हूं।

भिखारी हंसने लगा– राजन्, फिर तुम्हारी खोपड़ी भी कहाँ भरी? भिक्षापात्र खाली का खाली है। जितना मेरा, उतना आपका, उतना ही संसार में सबका पात्र रिक्त है।

आपने सुना होगा, एक प्रसिद्ध शेर–

दुनिया जिसे कहते हैं, जादू का खिलौना है,

मिल जाए तो मिट्टी है, खो जाए तो सोना है।

यहाँ जो मिल जाता है वही मिट्टी हो जाता है। असल में मिट्टी और सोने की परिभाषा

ही कुल इतनी है कि सोना वह, जो अभी नहीं मिला, जिसका हम सपना संजोए बैठे हैं; और मिट्टी वह, जो हमारे पास है। जो भी मिल जाता है, मिलते ही सब मिट्टी हो जाता है। वह भीतर का भिखमंगापन, वह खालीपन खत्म ही नहीं होता।

तुम पूछते हो मैं क्या करूं? कैसे समस्या हल होगी? मेरी मानसिक असंतुष्टि का कारण क्या है? यह भिखारी मन ही तो असंतुष्टि का कारण है। मन यानी असंतुष्टि का दूसरा नाम।

ओम प्रकाश शर्मा, तुम्हारे माता–पिता ने तुम्हें सुंदर नाम दिया है 'ओम प्रकाश' शायद उन्होंने सोचा नहीं होगा, तुमने भी नहीं सोचा होगा कि इसका अर्थ क्या है! जब तक तुम ओम् के प्रकाश को न जान लोगे, तब तक जीवन में आंतरिक भराव घटित नहीं होगा। ओम यानी 'परमात्मा की ध्वनि'.....अस्तित्व का महासंगीत.... जो रोशनी से ओतप्रोत है। जब तक तुम परमात्मा के प्रकाशमय संगीत को न पहचानोगे, रिक्तता न मिटेगी। अभी थोड़ी देर पहले हम मा ओशो प्रिया का गाया हुआ कीर्तन सुन रहे थे– 'ओम हूं, आनंद हूं, ब्रह्म सच्चिदानंद हूं'..... सत्–चित्–आनंद तभी घटित होता है जब ब्रह्म के अनहद–नाद यानी 'ओंकार' में डुबकी लगती है। अपने भीतर ध्यान में डूबो। धीरे–धीरे ध्यान से समाधि की ओर यात्रा शुरु होगी। समाधि में ओम् की आवाज सुनाई पड़ेगी.... प्रभु के आगमन की पदचाप..... और धीरे–धीरे पता चलेगा कि तुम्हारे अंतस का आकाश न केवल संगीत से भरा है, बल्कि प्रकाश से भी ओत–प्रोत है; तब तुम अपने नाम का अर्थ जानोगे। और तब तुम्हारे जीवन में परमानंद की वर्षा होगी। फिर यह खालीपन मिटेगा।

मैंने सुना है कि एक व्यक्ति 'काके दा होटल' नामक छोटे से ढाबे पर खाना खाने पहुँचा। खाने के बाद वाश–वेसिन पर जाकर 'खू, खाँ, आक थू' खूब जोर–जोर से मुँह साफ करने लगा। आसपास खाते हुए लोगों का जी मितलाने लगा। उन्होंने शिकायत की तो मैनेजर ने आकर उस व्यक्ति से पूछा– 'आपने कभी किसी ढंग के होटल में खाना खाया है?' वह व्यक्ति बोला– 'हाँ, हयात् में, अशोका में, ओबराय में, ताज में, सबमें खाया है।' मैनेजर बोला– 'वहाँ जब आप ऐसा करते थे तो कोई कुछ कहता नहीं था?' वह व्यक्ति बोला– 'कहते थे, जरूर कहते थे। उन्हीं के कहने से तो मैं यहाँ आया हूं। धक्के देकर बाहर निकालते हुए वे लोग कहते थे– 'उल्लू के पट्ठे, क्या तुमने इसे काके दा होटल समझा है?'

तुम्हारी खोपड़ी काके दा होटल है। तुम मन की आवाजों में इतने खोए हो कि अंतरात्मा की सूक्ष्म लयबद्धता को पकड़ ही नहीं पाते। तुम्हारी 'खू, खाँ, आक थू' बंद हो, दिमागी शोरगुल समाप्त हो, तो प्रभु का संगीत सुनाई पड़े। वास्तव में भीतर खालीपन नहीं है, मगर तुम भीतर कभी गए ही नहीं। इस खोपड़ी के कोलाहल के पार, विचारों के जाल से परे, भावनाओं व वासनाओं के पीछे, जहाँ तुम्हारी चेतना है; उस आत्मा के केंद्र में परमात्मा

का प्रणव–नाद गूंज रहा है ओम् के रूप में, उसमें डुबकी मारो। फिर आंतरिक भराव का पता चलेगा। फिर यह शून्यता, पूर्णता में परिवर्तित हो जाएगी। और तब तुम भी गा सकोगे– 'ओम् हूं, आनंद हूं, ब्रह्म सच्चिदानंद हूं'। उस शून्य के स्वर के बारे में कुछ बताना बहुत कठिन है। उस निशब्द में गूंज रहे 'शब्द' को शब्दों से व्यक्त करना केवल कठिन नहीं, असंभव–सा ही समझो।

मुमकिन नहीं कि मौन का पर्दा उठा सकूं
जो बात राजे दिल की है होंठों पे ला सकूं।
क्या रंग है खुश्बू है, बिन मै के खुमारी है
चाहूं कि जामे मस्ती सभी को पिला सकूं।
कैसा तिलिस्म है तेरी महफिल के नूर में
जी भर के देखू पर न जरा भी दिखा सकूं।
एक धुन सी उठ रही है मेरे दिल के साज पर
खुद सुन सकूं मगर न किसी को सुना सकूं।

कैसा तिलिस्म है तेरी महफिल के नूर में, जी भर के देखूं पर न जरा भी दिखा सकूं.... उस प्रकाश को तुम देख लोगे मगर किसी का दिखा न सकोगे। चाहोगे वह अंतर्रात्मा की शराब सबको पिलाना, मगर पिला न सकोगे। अपने भीतर गूंजती भागवत गीता को, भगवान के गीत को सुनाने की अभीप्सा पैदा होगी, किंतु सुना न सकोगे। आत्मा का रहस्य शब्दों में ढाल न सकोगे। आज तक कोई नहीं ढाल पाया।

एक धुन सी उठ रही है मेरे दिल के साज पर,
खुद सुन सकूं मगर न किसी को सुना सकूं।
मुमकिन नहीं कि मौन का पर्दा उठा सकूं,
जो बात राजे–दिल की है ओठों पे ला सकूं।

वही राजे–दिल की बात तुमसे कहना चाहता हूं ओम प्रकाश। ध्यान में, समाधि में डूबो। अपने नाम को सार्थक करो। फिर आनंद ही आनंद है। असली सफलता स्वयं के अंदर है। न केवल 'सफलता' बल्कि 'सुफलता' वहाँ तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है।

धन्यवाद।

# 4

# विपस्सना और भुलक्कड़पन

**प्रश्न– आज एक प्रश्न, प्रश्नकर्ता की तरफ से नहीं, उनकी पत्नी की तरफ से है। पूछा है कि मेरे पतिदेव विगत बीस वर्षों से विपस्सना ध्यान साध रहे हैं, और महाभुलक्कड़ हो गए हैं। उनके कुछ अन्य साधक मित्रों के साथ भी यही दुर्घटना घटी है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि या तो विपस्सना की पद्धति ही गलत है, अथवा मेरे पतिदेव से कुछ भूल–चूक हो गई है। वे कई बार आपसे प्रश्न पूछने के लिए भी यहां आए, किंतु पूछना ही भूल गए। इसीलिए मैं उनकी तरफ से यह सवाल पूछ रही हूं। कृपया मार्गदर्शन दें।– वीणा महाजन**

ओशो शैलेन्द्र– श्रीमती वीणा महाजन, हे देवी! तुम्हें नहीं भूले... यही क्या कम है! गनीमत समझो कि तुम्हें पहचानते हैं! वरना बीस वर्ष की विपस्सना पर्याप्त है सब कुछ भुलाने के लिए।

मैंने सुना है एक विपस्सना के साधक बाजार से बहुत सारा सामान खरीद कर लौटे, घर आकर उन्होंने अलग–अलग थैलियों में और पैकिटों में कुछ ढूंढ़ना शुरु किया। उनके बेटे ने पूछा कि पापा आप क्या खोज रहे हैं? वे बोले कि मैं कोई चीज मार्केट में भूल आया हूं, और अब यह भी याद नहीं आ रहा है कि क्या भूल आया हूं? उन्होंने सारा सामान उलट–पलट कर रख दिया। अपने कोट के पाकेट में देखा, पैंट की जेब में देखा, शर्ट की जेब में टटोला, तभी उनके

बेटे ने पूछा कि पापा, मुझे जोर की भूख लग रही है। मम्मी कहाँ हैं?

उन्होंने कहा– लो..... अच्छा किया जो तुमने स्मरण दिला दिया बेटा, तुम्हारी मम्मी को ही तो बाजार में भूल आया हूं। इतनी देर से यही तो मुझे याद नहीं आ रहा था कि किसे भूल आया हूं?

मैंने सुनी है एक और घटना इन्हीं महा–भुलक्कड़ विपस्सना–साधक के बारे में, पहुंचे एक मनोवैज्ञानिक के पास और बोले कि 'मुझे भूलने की बीमारी हो गई है। बहुत सालों से परेशान हूं।' मनोवैज्ञानिक ने पूछा कि 'कितने सालों से आपको तकलीफ है? याददाश्त कम होने की यह बीमारी कब से है?' भुलक्कड़ महोदय अपनी सांस पर एकाग्रता साधे हुए बोले– 'कौन सी बीमारी? मुझे भला कौन सी बीमारी हुई है? मैं तो एकदम ठीक–ठाक हूं। डॉक्टर साहब, आप का मेरे यहाँ आना कैसे हुआ? किसने आपको बुलाया?' डॉक्टर ने कहा– 'माफ करें, यह मेरा घर है। मैं आपके यहाँ नहीं आया हूं, आप मेरी क्लिनिक में तशरीफ लाए हैं!'

जो व्यक्ति कहीं भी एकाग्रता साधेगा वह निश्चित रूप से भुलक्कड़ हो ही जाएगा। एकाग्रता ध्यान नहीं है। ओशो कहते हैं– कंसन्ट्रेशन इज नॅाट मेडिटेशन। इस भेद को ठीक से समझ लेना क्योंकि दुनिया में बहुत लोग एकाग्रता को, चित्त को एक जगह फोकस करने की प्रक्रिया को ही ध्यान समझते हैं।

मैंने सुना है एक और विपस्सना के साधक के बारे में– बड़े एडवोकेट थे, एक दिन अपने क्लाइन्ट से मिलने उसके घर जा रहे थे। जब क्लाइन्ट के मकान के नजदीक पहुंचने को हुए तब वे उसका नाम और मकान नम्बर ही भूल गये। उन्होंने अपनी सेक्रेटरी को मोबाईल से फोन करके पूछा कि 'जरा यह तो बताओ मैं किसके घर जा रहा था, और वह किस बिल्डिंग के किस फ्लैट में रहता है?'

सेक्रेटरी उनकी इस आदत से सुपरिचित थी। वह बोली– 'वकील साहब, आप जिनसे मिलने जा रहे हैं, उनका नाम है श्री प्रकाश चंद जैन। इंदिरा गांधी चौक पर गणेश भवन के तीसरे फ्लोर पर रहते हैं। और सर, याद रखिएगा...... आपका नाम है श्री रमेश चंद साहुवाला, इन्कम टैक्स सलाहकार, एम.काम., एल.एल.बी.।'

कोई व्यक्ति बहुत एकाग्रता साधेगा तो संभव है, यह हो सकता है कि अपना नाम भी भूल जाए! सांस पर साधो, चाहे किसी और विषय पर, एकाग्र चित्त केवल अपने विषय के प्रति जागृत रहता है, शेष सबके प्रति मूर्च्छित हो जाता है। स्वयं के प्रति भी बेहोश हो जाता है।

बहुत प्रसिद्ध वैज्ञानिक हुआ– थामस अल्बा एडिसन। एक बार वह अपना नाम भूल गया था। विश्वयुद्ध के बाद अमेरिका में राशनिंग सिस्टम शुरु हुआ। एडिसन को भी राशन की लाईन में लगना पड़ा। जब उसका नाम पुकारा गया तो वह भी कतार में मुड़कर भीड़ में देखने लगा कि किसको बुलाया जा रहा है? पीछे खड़े सज्जन ने कहा कि श्रीमान, जहाँ तक मैं समझता हूं आप ही थामस अल्बा एडिसन हैं। उसने कहा– अरे हाँ, अच्छा किया तुमने मुझे याद दिलाया। मुझे भी यह नाम तो कुछ जाना–माना, परिचित–सा लग रहा था।

एडिसन एक बार अपनी पत्नी को भूल गया था। वह सदा अपनी प्रयोगशाला में व्यस्त

रहता, अपने प्रयोगों में इतना एकाग्र रहता कि उसकी पत्नी चुपचाप उसकी सेवा करती रहती, ठीक समय पर भोजन–पानी लाकर रख जाती। थाली उठाकर ले जाती। चुपचाप सारी जरूरतों का ख्याल रखती रही। कई साल बीत गये। एडिसन अपने आविष्कारों में व्यस्त रहा।

एक दिन एडिसन ने उस महिला की तरफ नजरें ऊपर उठाकर आश्चर्य से पूछा कि 'आप कौन हैं?' उसने कहा, 'मैं आपकी पत्नी हूं।' एडिसन बोला– 'क्या मेरी शादी हो चुकी? कहीं आप मजाक तो नहीं कर रही हैं!' स्वभावतः जो व्यक्ति निरंतर विज्ञान की खोज में व्यस्त है, एक ही दिशा में जिसका चित्त लगा हुआ है, वह दुनिया की सारी चीजें भूलने लगेगा। यह अकेली विपस्सना पद्धति का सवाल नहीं है, कहीं भी तुम्हारा चित्त एकाग्र हुआ कि तुम शेष जगत के प्रति बेहोश होने लगोगे। तुम्हारी पूरी चेतना एक बिंदु पर फोकस हो जाएगी। जैसे कोई व्यक्ति टार्च से रोशनी डाले तो कक्ष का एक हिस्सा बहुत प्रकाशित हो जाए, लेकिन शेष कमरा अंधेरे में खो जाए; वैसी ही एकाग्रता है।

विपस्सना करने वाले अपनी श्वास पर एकाग्रता साधते रहते हैं, और वे सोचते हैं कि यही ध्यान है। वींणा महाजन, यही भूल तुम्हारे पति से हो रही है। उनसे कहना कि एकाग्रता ध्यान नहीं है। समग्रता है ध्यान। 'अवेयरनैस इन टोटालिटी इज मेडिटेशन' समग्ररूपेण जागरूकता है ध्यान। बाह्य विषय के प्रति जागृत रहो, और स्वयं के होने का अहसास भी बना रहे। यदि आत्म–स्मरण नहीं है, सेल्फ–अवेयरनेस नहीं है, तो वह ध्यान नहीं हुआ। तुम खुद को भूल बैठे और किसी एक बिंदु पर जागरूकता टिका दी, तो वह साक्षीभाव न हुआ। साक्षीभाव यानी चेतना की दुधारी तलवार– डबल एरोड कांशियसनेश।

ऐसा समझें कि आप फिल्म देखने के लिए टाकीज में गये, और तीन घंटे के लिए अपने–आप को बिल्कुल भूल गये। फिल्म की कहानी इतनी इंट्रेस्टिंग थी, रूचिकर थी कि आपको कुछ और याद ही न रहा। न कोई चिंता, न कोई फिक्र, न घर की याद, न ऑफिस की याद, न अपनी याद..... कुर्सी पर बैठे–बैठे कमर में दर्द होने लगा, उसका भी ख्याल नहीं; पैर में मच्छर काटते रहे, वह भी पता न चला। क्या आप इसको ध्यान कहेंगे? यद्यपि एकाग्र व्यक्ति, फिल्म के पर्दे पर जो चल रहा है, उसके प्रति जागा हुआ है, परंतु स्वयं अपने प्रति सो गया है; और चारों तरफ जो अन्य घटनाएं घट रही हैं उनके प्रति भी सुप्त है। यह तो एक प्रकार की नशे की अवस्था हुई।

दुनिया में लोग अलग–अलग प्रकार की शराबें पीते हैं। शराबघरों में वह जो बोतलों में बंद मिलती हैं, सिर्फ वही रासायनिक पदार्थ ही शराब नहीं है। कोई धन–मद में, कोई पद–मद में, कोई ज्ञान–मद में, तो कोई प्रेम–मद में चूर है। हम कहीं न कहीं अपने को भुलाने के लिए बड़े आतुर हैं। इसलिए संपत्ति को, शक्ति को, बुद्धि को, प्रीति को, इनको भी सूक्ष्म नशा समझना। सामान्यतः कहा जाता है कि प्रेम अंधा होता है। कहना चाहिए कि राजनीति भी अंधी होती है। समृद्धि की अपनी शराब होती है। विचारों की, विश्वासों की, धारणाओं की, फिलॉसफी की बौद्धिक शराब होती है।

धर्म के नाम पर भी बहुत नशे चलते हैं। सामान्यतः हम जिसे विपस्सना ध्यान कहते हैं वह

ध्यान नहीं, वह भी एक प्रकार का नशा है। क्या फर्क पड़ता है आप टाकीज में फिल्म देख रहे हैं, या अपनी श्वास को देख रहे हैं? आप उसे तो नहीं देख रहे जो देखने वाला है। वह जो द्रष्टा है, साक्षी है, उसे जनना ही वास्तव में ध्यान है। दृश्य में खो जाना एकाग्रता है, वह ध्यान नहीं है। वह विषय, वह दृश्य क्या है, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। एक आदमी अश्लील पत्रिका पढ़ते हुए एकाग्र है, दूसरा आदमी कोई धर्मग्रंथ पढ़ते हुए एकाग्र है। इनकी एकाग्रता में क्या भेद हुआ? हाँ! दृश्य में भेद है, किताबें अलग-अलग हैं। लेकिन किताबों में वे दोनों व्यक्ति जिस ढंग से खो गये हैं, वह खोना तो ठीक एक जैसा है। उस खोने में तो कोई अंतर न हुआ। कोई नदी में डूबकर मरा, या तालाब में, अथवा बाथ-टब या महासागर में; डूबने एवं मरने की घटना तो वहीं की वहीं हुई।

एक व्यक्ति फिल्मी गाना गुनगुनाने में मस्त है, और दूसरा व्यक्ति भजन-कीर्तन करने में लीन है। क्या आप सोचते हैं इन दोनों की तल्लीनता में कोई फर्क है? कोई भी फर्क नहीं। एक बच्चा स्कूल के परीक्षाभवन में बैठा है, उसका सारा ध्यान प्रश्नोत्तर लिखने में एकाग्र है, और एक दूसरा व्यक्ति मंदिर में बैठा मूर्ति पर एकाग्र है। क्या इन दोनों की एकाग्रता में कोई भेद है? कोई भी भेद नहीं। क्योंकि ये अपने से बाहर किसी वस्तु पर एकाग्र हैं। उपरोक्त दोनों उदाहरण कंसन्ट्रेसन के हैं- इनमें चेतना दीपक की भांति नहीं, टार्च की भांति है।

ध्यान है दीपक की भांति रोशनी का बिखरना। माना की रोशनी मद्धिम-मद्धिम होगी, लेकिन सब दिशाओं मे जाएगी। बाहर के दीया तले तो अंधेरा होता है, किंतु अंदर चेतना के तले अंधकार नहीं बचता। हमारी चेतना की ज्योति स्वयं को भी जानती है- वही ठीक ध्यान-पद्धति है। लेकिन तथाकथित विपस्सना के शिक्षक गलत विधि सिखा रहे हैं। बड़ी संख्या में लोग उनके शिकार हो रहे हैं, और भुलक्कड़ हो गये हैं।

मैंने सुना है, सेठ चंदूलाल का बेटा भोंदूलाल तीन दिन तक स्कूल नहीं आया। चौथे दिन जब पहुंचा तो शिक्षक ने पूछा- भोंदूलाल तीन दिन कहाँ गायब रहे? भोंदूलाल ने कहा- मेरे दादाजी की मृत्यु हो गई। शिक्षक ने कहा- अरे, बड़े अफसोस की बात है, मुझे पता नहीं था। कैसे उनकी मृत्यु हुई, क्या बीमारी थी? फजलू ने कहा- यह तो नहीं पता चला कि बीमारी क्या थी, लेकिन वे पिछले पचास साल से विपस्सना साध रहे थे, और बुढ़ापे में अति-भुलक्कड़ हो गये थे, हर छोटी-मोटी बात भूलने लगे थे; ऐसा लगता है कि उस रात नींद में दादाजी श्वास लेना ही भूल गये।

वीणा महाजन, तुम्हारे पति की यह भुलक्कड़पन की बीमारी एकाग्रता की वजह से है। कहीं भी चित्त को एकाग्र किया तो शेष जगत का विस्मरण हो जाएगा। यह विधि स्वयं ध्यान नहीं है। लेकिन श्वास की विधि का भी उपयोग किया जा सकता है ध्यान के प्राथमिक चरण के रूप में; भूमिका के रूप में। ओशो ने निर्वाण उपनिषद् पर प्रवचन देते हुए सोहम् ध्यान की विधि कही है- श्वास की आवाज को सुनो! भीतर जाती सांस में 'सो' जैसी ध्वनि और बाहर जाती श्वास में 'हम्' से मिलती-जुलती ध्वनि हो रही है। हमारे तन के तंबूरे में श्वासों की जो नैसर्गिक आवाज हो रही है उस आवाज को सुनते-सुनते एक दिन महासूक्ष्म ध्वनि 'ओंकार' को सुन पाना संभव

हो जाता है; जिसे संत अनाहत नाद कहते हैं। संजीवनी मंत्र साधना वाले संगीत में आपने सुना होगा मा ओशो प्रिया का यह गीत–

तंबूरा क्या बोले रे! सोहम् सोहम् सोहम् सोहम्।।
आती सांसें 'सो' बोलें। जाती सांसें 'हम्' बोलें।
दोनों मिलकर 'सोहम्' बोले रे!
तंबूरा क्या बोले रे! सोहम् सोहम् सोहम् सोहम्।।
'सो' बोले बादल गरजे। 'हम्' बोले बिजुरी चमके।
दोनों मिलकर 'सोहम्' बरसे रे!
तंबूरा क्या बोले रे! सोहम् सोहम् सोहम् सोहम्।।

विपस्सना पद्धति का अगर ठीक ढंग से प्रयोग किया जाए– एकाग्रता में नहीं, समग्रता में; तो श्वासों की आवाज सुनते हुए एक दिन हम भीतर ईश्वर का स्वर भी सुन लेंगे, आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति कर सकेंगे। तब यह विधि भुलक्कड़पन में नहीं, आत्म–स्मरण में ले जाएगी। इसलिए विपस्सना का स्टैंपिंग स्टोन की तरह उपयोग किया जाना चाहिए। वह कोई चौबीस घंटे साधने की चीज नहीं है। आरंभ में पांच–सात, या दस मिनिट साधो, श्वास की आवाज को सुनो और तब भीतर के अनाहत नाद को सुनने में डूबो। फिर उसका स्मरण रखते हुए जगत में जियो। यह हुई समग्ररूपेण जागरूकता की कुंजी। बाहरी दुनिया में जीते हुए भीतर गूंज रही 'सदा–ए–आसमान' के प्रति सुमिरन बना रहे।

किसी शायर ने अर्ज किया है–

दरीचां बेसदा कोई नहीं है, अगरचें बोलता कोई नहीं है।
खुलीं हैं खिड़कियां हर घर की लेकिन, गली में झांकता कोई नहीं है।
मैं ऐसे जमघटे में खो गया हूं, जहाँ मेरे सिवा कोई नहीं है।
रुकूं तो मंजिलें ही मंजिलें हैं, चलूं तो रास्ता कोई नहीं है।

ध्यान के नाम पर तुमने कुछ क्रिया–कांड किया, कि चूके। रुकूं तो मंजिलें ही मंजिलें हैं, चलूं तो रास्ता कोई नहीं है.... चले, कि भटके। याद रखना– ध्यान अर्थात ठहरना। होशपूर्ण निष्क्रियता। किसी क्रिया में उलझना नहीं, खोना नहीं। किसी मनो–प्रक्रिया में आत्म–मूर्च्छित मत हो जाना। एकाग्रता मानसिक क्रिया है। सहज फैली हुई जागरूकता हमारा स्वभाव है। एकाग्रता संसार में उपयोगी है। वहाँ जरूर उसका उपयोग करना। अध्यात्म में वह शुरुआत में तो सहयोगी, साधक हो सकती है, परंतु अंत में बाधक बन जाती है। समझना। संभलना।

धन्यवाद।

# बाजात अनहद ढोल रे

## 5

# अध्यात्म का विज्ञान

**प्रश्न– आज दिल्ली के एक मित्र श्री राम मनोहर ने सवाल पूछा है कि क्या ध्यान के लिए श्रद्धा अनिवार्य है? क्या एक वैज्ञानिक बुद्धि वाला व्यक्ति भी ध्यान कर सकता है? मेरी पत्नी राम और कृष्ण का नाम जपती रहती है। क्या नाम जप से ध्यान संभव है?**

ओशो शैलेन्द्र– राम मनोहर, एक वैज्ञानिक बुद्धिवाला व्यक्ति ज्यादा आसानी से ध्यान कर सकता है। ध्यान एक विज्ञान है– आत्मा का विज्ञान, चेतना का विज्ञान, साइंस ऑफ दि सोल। भविष्य में हो सकता है, धर्म के नाम पर जो विभिन्न संप्रदाय चल रहे हैं, वे सब खो जाएं और एक नये विज्ञान का जन्म हो– अध्यात्म का विज्ञान। जैसे फिजिकल साईंसेज हैं– फिजिक्स, केमिस्ट्री, बायोलॉजी, शरीर–विज्ञान है। और पिछले 100 साल में मन का विज्ञान मनोविज्ञान पैदा हुआ। अगर हम और गहरे चलें तो वहाँ भीतर हमारी आत्मा है। अभी तक वैज्ञानिक उसको इंकार करते रहे हैं। यह बात स्वयं अपने–आप में ही अवैज्ञानिक है। यह तो ऐसे हुआ कि जो वैज्ञानिक वस्तुओं का परीक्षण कर रहा है वह पदार्थ के होने को तो मानता है, और वह जो निरीक्षक है, द्रष्टा है; उसके होने को नहीं मानता। वह जो

अवलोकन कर रहा है वह कौन है? उसे वह इंकार कर रहा है। वह कह रहा है आत्मा जैसी कोई चीज नहीं। यह तो हद दर्जे की अवैज्ञानिक घोषणा हो गई। अपने भीतर जाकर पहले ढूंढ़ो तो सही! तुमने कैसे पता लगा लिया कि तुम नहीं हो। और अगर तुम कहो कि तुम नहीं हो तो ऐसा कहने से भी यही सिद्ध होगा कि तुम हो। वरना कौन कह रहा है कि मैं नहीं हूं?

मैंने सुनी है एक मजाक कि मुल्ला नसरुद्दीन रात देर तक शराबघर में शराब पीता रहा और नशे में चूर उसने अपने दस–पंद्रह मित्रों को दावत दे डाली। वे लोग उससे कह रहे थे कि तुम बहुत कंजूस हो, कभी तुमने कोई पार्टी नहीं दी। नसरुद्दीन ने कहा– चलो आज ही हो जाए। सबकी दावत है, मेरे घर पर भोजन के लिए चलो। मित्र बहुत खुश हुए, नशे में डगमगाते, सब गीत गुनगुनाते नसरुद्दीन के घर चले।

जैसे–जैसे घर नजदीक आने लगा नसरुद्दीन को भय लगने लगा और भय को कारण शराब का नशा भी उतरने लगा, कि पत्नी को वह क्या जवाब देगा कि इन पंद्रह–बीस नशेलची लोगों को कहाँ से उठा लाए? घर के द्वार पर पहुंचकर उसने अपने मित्रों से कहा कि आप लोग भी सब शादी–शुदा हैं, भली–भांति जानते हैं कि भीतर जाकर मेरी क्या कठिनाई होगी, तो मुझे थोड़ा मौका दें दो–चार मिनट का; मैं पहले जाकर अपनी पत्नी को समझाता हूं, फुसलाता हूं, तब आप लोगों को भीतर बुलाऊंगा। मित्रों ने कहा– ठीक हम लोग इंतजार करते हैं।

कांपता हुआ नसरुद्दीन भीतर गया। जाकर पत्नी से बोला– बड़ी भारी भूल हो गयी। आज नशे में मैं बहुत बड़ी गल्ती कर बैठा हूं। ये पंद्रह दुष्टों को बुला लाया.... अब तुम्हीं किसी प्रकार इस मामले को निपटाओ। पत्नी तो बहुत नाराज हुई। आग–बबूला होकर उसने कहा– तुम जाओ, ऊपर की मंजिल पर बैठो, मैं उन हरामजादों को देखती हूं।

नसरुद्दीन ऊपर की मंजिल पर बैठ गया। खिड़की से सब सुन रहा है कि नीचे क्या हो रहा है। उसकी पत्नी मित्रों से बोली– अरे, आप लोग यहाँ कैसे खड़े हैं? उन्होंने कहा– आपके आदरणीय पतिदेव नसरुद्दीन साहिब हमें बुला के लाए हैं... दावत के लिए। उसने कहा– क्षमा करें, मेरे पति तो घर में ही नहीं हैं। आप लोग शायद ज्यादा पी गए हैं, नशे की वजह से किसी भ्रम में, हैलुशिनेसन में पड़ गए हैं। उन्होंने कहा– हद हो गई, नसरुद्दीन हमारे सामने ही दरवाजे से अंदर गया है।

गुलजान बेगम बोली– माफ करें, वो घर में नहीं हैं। आप लोग फिलहाल जाइए।

बहस होने लगी। वे बार–बार कहने लगे कि अभी दो मिनिट पहले तो हमारे सामने

नसरुद्दीन भीतर गया है। पत्नी कहे कि नसरुद्दीन घर में है ही नहीं। आप लोग नशे में कुछ का कुछ देख लिए हैं। बेचारा नसरुद्दीन ऊपर बैठा–बैठा सब सुन रहा है। अंततः उससे न रहा गया, खिड़की में से मुंह निकालकर चिल्लाया– बदतमीजो, उस अबला स्त्री की बात मानते क्यों नहीं हो? बेवकूफ शराबियो, जब वह बेचारी साफ–साफ कह रही है कि मैं नहीं हूं घर में, तो मैं घर में नहीं हूं। हो सकता है तुम भी ठीक कह रहे हो कि नसरुद्दीन तुम्हारे सामने भीतर गया। लेकिन यह भी तो हो सकता है कि वह पीछे के दरवाजे से बाहर निकल गया हो! वह बिल्कुल सच बोल रही है कि मैं नहीं हूं। मेरी पत्नी कभी झूठ नहीं बोलती।

लेकिन 'मैं नहीं हूं' जब तुम यह घोषणा करोगे तो इससे भी सिद्ध हो जाएगा कि घोषणा करने वाला है।

विज्ञान अभी तक आत्मा को अर्थात स्वयं के होने को इंकार करता रहा.... वह नसरुद्दीन जैसी ही मूढ़तापूर्ण अवैज्ञानिक घोषणा है।

राम मनोहर, ध्यान स्वयं ही एक विज्ञान है। ओशो ने अपनी एक किताब का नाम रखा है 'ध्यान विज्ञान'। एक दूसरी किताब का शीर्षक है 'चेतना का विज्ञान'। वास्तविक धर्म आंतरिक विज्ञान ही है। उसके लिए किसी अंधविश्वास की, किसी भरोसे की जरूरत नहीं है। लेकिन हाँ! एक हाईपोथिटिक ट्रस्ट तो कम से कम चाहिए ही। वैज्ञानिक भी कोई अनुसंधान करता है तो उसके पहले एक हाईपोथिसिस बनाता है। बिना हाईपोथिथिस के, बिना परिकल्पना के कोई खोजबीन शुरु ही न हो पाएगी। जिस दिन प्रयोगों के उपरांत निश्चितरूपेण परिणाम आ जाएंगे उस दिन सिद्धांत बनेगा, नियम बनेगा। लेकिन उसके पहले भी एक हाईपोथिटिक ट्रस्ट तो चाहिए न!

मैं आपसे निवेदन करूंगा कि ध्यान के लिए भी एक हाईपोथिटिक ट्रस्ट, एक परिकल्पनात्मक श्रद्धा चाहिए, सिर्फ प्रयोग आरंभ करने के लिए। विज्ञान प्रयोग करता है, ध्यान योग साधता है। वैज्ञानिक की प्रयोगशाला बाहर है, धार्मिक व्यक्ति की प्रयोगशाला उसकी अंतरात्मा, उसकी अपनी चेतना है। विज्ञान की विधि पदार्थ का अवलोकन है। धर्म की विधि आत्म–निरीक्षण है, स्वयं के प्रति जागरूकता है। इसलिए विज्ञान में और सच्चे धर्म में एक समन्वय हो सकेगा। स्मरण रहे, जब मैं कह रहा हूं 'धर्म' तो मेरा तात्पर्य किसी हिंदू, मुसलमान, जैन आदि से नहीं है। वे सब अंधविश्वास युक्त धारणाएं हैं। वे मन की मान्यताएं हैं, वे वास्तिविक धर्म नहीं हैं। ध्यान ही एकमात्र वास्तविक धर्म है। अपने भीतर ढूंढ़ो, वहाँ शून्य में पूर्ण छिपा है, और पूर्ण में शून्य छिपा है।

किसी शायर ने लिखा हैः

जो चीज इकहरी थी, वो दोहरी निकली;

सुलझी हुई बात थी, वो उलझी निकली।

सीपी तोड़ी तो उससे मोती निकला;

मोती तोड़ा तो उससे सीपी निकली।

जीवन में गहराईयों पर गहराईयां हैं। देह के अंदर मन, और मन के अंदर आत्मा है। आत्मा का केन्द्र परमात्मा है। अपने भीतर डूबो, चेतना के रहस्यलोक में उतरो। अभी तक का विज्ञान बहिर्मुखी रहा है। आब्जैक्टिव रहा है, वस्तु केंद्रित रहा है। ध्यान है–'सब्जैक्टिव अवेयरनेश' यानी अपने प्रति होश। अभी तक का विज्ञान अधूरा रहा है, अध्यात्म उसमें जुड़ जाए तो वह पूर्ण विज्ञान हो जाएगा।

मैं वैज्ञानिकों से पूछना चाहता हूं– तुमने स्वयं को अवलोकन के बाहर क्यों छोड़ दिया? खुद पर नजर कब डालोगे? चांद या मंगल ग्रह पर पहुंचना आसान है, एवरेस्ट पर चढ़ना सरल है, प्रशांत महासागर की गहराईयों में उतरना आसान है। स्वयं के भीतर उतरना कहीं अधिक कठिन प्रतीत होता है, क्योंकि हमने कभी कोशिश ही नहीं की। वास्तव में वह कठिन नहीं है।

आपने पूछा कि क्या श्रद्धा अनिवार्य है? नहीं, जिसे सामान्यतः तुम श्रद्धा कहते हो अंधविश्वासरूपी, उसकी तो कोई जरूरत नहीं। लेकिन एक हाईपोथैटिकल ट्रस्ट तो चाहिए, बस उतनी ही जरूरत है। कुछ मानने की जरूरत नहीं। याद रखना भगवान गौतम बुद्ध नास्तिक थे। भगवान महावीर नास्तिक थे। फिर भी वे ध्यान में डूब सके, और अपने भीतर परम मंजिल का पा सके। तो ध्यान के लिए किसी अंधविश्वास या पूर्व–मान्यता की जरूरत नहीं। बस एक भरोसा कि जब मैं हूं तो मैं अपने भीतर जाकर स्वयं की आंतरिकता को पहचान सकूंगा। जिस व्यक्ति ने स्वयं को जान लिया है, उसके हाथ में मैं अपना हाथ दे सकूंगा। तुम विज्ञान की खोज भी करते हो तो किसी और सीनियर वैज्ञानिक या प्रोफेसर के साथ मिलकर करते हो कि नहीं? तुमसे पहले जो वैज्ञानिक हो चुके हैं उनकी खोजों को ख्याल में रखकर करते हो कि नहीं? बस ऐसा ही धर्म के जगत में करना। हमसे पहले बहुत लोग आत्मा की गहराईयों में जा चुके हैं उन्होंने जो कहा है, उसे मानने की जरूरत नहीं, लेकिन कम से कम इतना.....थोड़ा सा भरोसा तो होना चाहिए कि हम भी प्रयोग करके

देखें। हम तब मानेंगे जब हम स्वयं जाने लेंगे उसके पहले मानने की कोई भी आवश्यकता नहीं। बस इतना परिकल्पनात्मक भरोसा चाहिए। बस इतनी आशा हो, एक उम्मींद हो–

मित्र, आशा के सहारे,

सोचता था लग सकेगी, पार ये नौका किनारे।

मित्र, आशा के सहारे....

किंतु सागर कि हिलोरें, और मेघाच्छन्न अंबर;

तेज चलता था प्रभंजन, और नौका जीर्ण जर्जर।

बुझ चुके थे आह, नन्हे दीप नभ के मौन तारे!

मित्र आशा के सहारे....

हाथ में पतवार जिसके, था न कुछ विश्वास उसका;

और यात्री बन चुका था, मुद्दतों से दास उसका।

अब उसी पर था डुबाए, और चाहे तो उबारे!

मित्र आशा के सहारे....

डूब जाना है उदधि का, किंतु शायद पार जाना;

और खो देना मोहब्बत का उसे मन में छिपाना।

फिर न कैसे छोड़ देता, नाव आशा के सहारे!

मित्र आशा के सहारे....

पहली बार तो नाव छोड़नी पड़ती है– नाविक पर भरोसा करके। धर्म के जगत में सद्‌गुरु ही नाविक है। एक बार तो थोड़ा साहस, थोड़ी श्रद्धा चाहिए। चुनौती स्वीकारने की हिम्मत चाहिए। माना कि खतरा है। ध्यान बड़े से बड़ा जोखिम है– अपनी अंतर्रात्मा में तुम चले खोजने.... महाशून्य में अन्वेषण करने!

बस उतनी ही श्रद्धा चाहिए, उससे और ज्यादा नहीं। कोई मान्यता नहीं, कोई अंधविश्वास नहीं। इसलिए वैज्ञानिक चित्त वाला बुद्धिमान व्यक्ति, यकां तक कि एक नास्तिक भी ध्यान कर सकता है। तथाकथित आस्तिकों की बजाय और ज्यादा आसानी से कर सकता है।

फिर आपने पूछा है कि मेरी पत्नी राम और कृष्ण का नाम जपती है। क्या इससे ध्यान संभव है? नहीं नाम जपने से कुछ न होगा। लेकिन नाम के पीछे भी बड़ा रहस्य छुपा है। यह

‘राम’ शब्द आयोध्या वाले राम से बहुत पुराना है। तभी तो दशरथ ने अपने बेटे का नाम रखा था। यह शब्द बड़ा प्राचीन है– आयोध्या वाले राम से पहले परसुराम हो चुके थे।

राम का अर्थ है– हमारे भीतर एक शाश्वत ध्वनि हो रही है..... जैसे कोई बहुत जल्दी–जल्दी राम–राम राम–राम या ओम–ओम ओम–ओम जप रहा हो। एक ऐसी ध्वनि निरंतर गूंज रही है। वह परमात्मा की आवाज ही राम कहलाती है। और भीतर ध्यान में जो रंग देखा जाता है वह श्यामल रंग ही ‘कृष्ण रंग’ है। कृष्ण यानि काला। इसीलिए कृष्ण का दूसरा नाम श्याम है, घनश्याम है; घने बादलों जैसा काला रंग– अंदर के रंग का प्रतीक है।

तो राम और कृष्ण जपने से कुछ न होगा, लेकिन इनके भीतर छुपे रहस्य को पहचानने से आत्मज्ञान होगा। भीतर राम का गुंजन हो रहा है, और भीतर कृष्ण रंग छाया है। उसमें डूबना होगा। अगर ये गीत, ये भजन, उस तरफ इशारा बन सकें तो इनका सांकेतिक उपयोग है, अद्भुत सूत्र छिपा है इनमें–

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।।

अगर ये भीतर की तरफ इशारा करने वाले संकेत बन जाएं, मील के पत्थर बन जाएं तब तो शुभ, लेकिन जपने से कुछ भी न होगा। जैसे ‘एच टू ओ’ ‘एच टू ओ’ जपने से प्यास नहीं बुझती; वैसे ही राम–राम जपने से राम नहीं मिलता। राम तो अंतर्यात्रा का सूत्र है। कृष्ण भी अंतर्यात्रा का सूत्र है। राम सुरति समाधि में डूबने की और कृष्ण निरति समाधि में डूबने की कुंजी है। में तुम्हें ओशोधारा के कार्यक्रम सुरति समाधि और निरति समाधि में डूबने के लिए आमंत्रण व चुनौती देता हूं। साहस करो। सिर्फ सवाल ही न पूछो, कुछ साधना के संकल्प से भी भरो।

6

# परमस्वर ही परमेश्वर है!

**प्रश्न– संत शिरोमणि कबीर साहब का वचन है 'कहत कबीर सुनो भाई साधो बाजत अनहद ढोल रे!' कृपया समझाएं कि उनका इशारा किस वाद्ययंत्र की तरफ है? संजीवनी ध्यान में मा ओशो प्रिया जी गाती हैं– 'अनहद बाजा बाजे रे! आओ ता–थैया नाचें।' ध्यान में इसी गीत को क्यों चुना गया? अनहद यानी क्या? ध्यान का ढोल या बाजे से क्या संबंध है?**

–मा ज्ञान निर्मोही

ओशो शैलेन्द्र– ध्यान का सारा लक्ष्य ही उस अनहद के बाजे को सुनना है। ध्यान तो सिर्फ एक पूर्व–भूमिका है, मन का कोलाहल शांत हो जाए ताकि भीतर का वह मद्धिम स्वर सुनाई पड़ सके। वह आवाज बहुत धीमी है। चीन के सुप्रसिद्ध संत लाओत्से अपनी महत्वपूर्ण कृति 'ताओ तेह किंग' में लिखते हैं– 'दि ग्रेट म्युजिक इज पेंफटली हर्ड' वह महासंगीत अत्यंत धीमा सुनाई पड़ता है। मा ज्ञान निर्मोही, वह वाद्ययंत्र कोई और नहीं, तुम ही हो। वह महासंगीत तुम्हारे हृदय की अंतर्वीणा पर ही गूंज रहा है।

यदि विचारों का शोरगुल भीतर मचा हुआ है तो इस बाजार के हल्ले–गुल्ले में वह बारीक–सी आवाज सुनाई न पड़ सकेगी। जब मन की सारी आवाजें शांत हो जाती हैं, तब

परमात्मा की अनहद ध्वनि सुनाई पड़ती हैं। जब कबीर कहते हैं– 'सुनो भाई साधो' तो उनका तात्पर्य है– 'हे साधुओ! साधना छोड़ो और सुनो।' साधु का मतलब होता है जो साधना कर रहा है, कबीर साहब कह रहे हैं– अरे साधुओ, अब ओंकार–श्रवण में डूबो; सुनो। यह 'सुनो भाई' का संदेश साधुओं को संबोधित करके बार–बार कबीर देते हैं– सुनो भाई साधो! सुनो भाई साधो! उनका जोर सुनने पर है। गौर से भीतर सुनो! वहाँ एक अद्भुत आवाज गूंज रही है। उसी को अनहद या अनाहत नाद कहा जाता है। 'वह परमस्वर ही परमेश्वर है!' वही प्रणव–ध्वनि ही परमात्मा है।

अनाहत ध्वनि यानी आहत बिना पैदा हुई आवाज। जैसे मैं ताली बजाउंफ– दो हाथों की चोट से– ठक्क.... एक आवाज हुई। भीतर का स्वर अनाहत है अर्थात वह बिना चोट, बगैर टक्कर के उत्पन्न हो रहा है। चूंकि परमात्मा के अनुभव में द्वैत नहीं है, वहाँ तो एक ही है। गुरु नानक कहते हैं 'एक ओंकार सतनाम' अर्थात वह एक ओंकार स्वरूप है, यही उसका सच्चा नाम है। संतों ने उसे नाम, सतनाम, या शब्द कहकर पुकारा है। ऐसा शब्द, जो तब सुनाई पड़ता है, जब मन के सारे शब्दों का कोलाहल समाप्त हो जाता है।

परमात्मा के शेष सभी नाम तो हमने दिए, लेकिन एक नाम ऐसा भी है जो वास्तव में उसी का है। वह हमने नहीं दिया। हम कहें राम, या कहें अल्लाह, कि गॉड, कि ईश्वर.... ये तो हमारे दिए गये नाम हैं। ये तो हमारी भाषाओं के शब्द हैं; इसलिए ऋषियों ने ओम के लिए एक अलग ही चित्रात्मक, पिक्चोरिल प्रतीक बनाया, यह बताने के लिए कि वह हमारी भाषा का हिस्सा नहीं है। हम उसे बोल नहीं सकते। वह स्वयं ही बोला जा रहा है। वह अजपा–जाप अपने–आप चल रहा है। परमात्मा स्वयंभू है। वह किसी से जन्मता नहीं, उसका कोई स्रोत नहीं है। वह खुद सारे अस्तित्व का स्रोत है।

.....फिर अनहद का एक और अर्थ सूफियों ने किया है। अनहद का प्रथम अर्थ तो है– अनाहत, बिना चोट की ध्वनि, अनस्ट्रक साउंड। जापान के झेन फकीर जिसे कहते हैं 'दि साउन्ड ऑफ वन हैंड क्लैपिंग' एक हाथ की ताली; और दूसरा सूफी अर्थ भी प्यारा है। अनहद यानी बेहद, जिसकी कोई हद न हो, सीमा न हो, असीम, विराट, अनादि और अनंत। वह अर्थ भी बड़ा महत्वपूर्ण है। तो अनहद में दोनों अर्थ समाए हुए हैं, अनाहत भी और हद के पार भी।

ओशो की एक किताब का शीर्षक– 'अनहद में विश्राम' संत मलूकदास के वचन पर आधारित है। दासमलूका कहते हैं– अनहद में विश्राम का नाम ही समाधि है। समाधि की तैयारी ध्यान है। ध्यान का लक्ष्य समाधि में डूबना है, उस अनहद के बाजे को सुनना है। ओंकार में तल्लीनता से समाधि घटित होती है। उस अनहद शब्द की मधुर धुन को सुनाने के लिए कबीर साहब ने गाया है–

मेरी सुरति सुहागन जाग री!

क्या तू सोवै मोह नींद में, उठ के भजन विच लाग री।
अनहद शब्द सुनो चित दे के, उठत मधुर धुन राग री।।
चरण शीश धर विनती करियो, पाएगी अटल सुहाग री।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, जगत पीठ दे भाग री।।

भगवान महावीर ने सम्यक्श्रवण पर बहुत जोर दिया। मौन में डूबकर सुनने वाले को मुनि कहा। पिछली सदी में एक अद्भुत संत हुए जे. कृष्णमूर्ति, उन्होंने भी राइट लिसनिंग पर, निर्विचार होकर सम्यक्श्रवण करने पर काफी बल दिया। वही बात कबीर साहब कह रहे हैं– सुनो भाई साधो। महावीर ने साधना से अधिक श्रवण को महत्व दिया। उन्होंने कहा, मैं चार तीर्थ बना रहा हूं। इसलिए तो महावीर को तीर्थंकर कहते हैं। तीर्थ यानी घाट, एवं तीर्थंकर यानी जिसने उस पार जाने के लिए, भवसागर तरने के लिए घाट निर्मित किए। महावीर कहते हैं मेरे चार तीर्थ हैं, पहला श्रावक, दूसरा श्राविका, तीसरा साधु, चौथा साध्वी। याद रखना उन्होंने श्रावक व श्राविका को प्रथम रखा है। साधु और साध्वी को बाद में रखा है, द्वितीयम्। साधना करने वाले साधु–साध्वी को ज्यादा महत्व नहीं दिया, सुनने वाले को सर्वाधिक महत्व दिया है। धन्य हैं वे, जो सुन सकें, वे सुन के ही पार हो जाएंगे; किसी और साधना की जरूरत नहीं। जो न सुन सकें, उन्हें साधना करनी पड़ेगी। और साधना का लक्ष्य क्या होगा? समस्त ध्यान विधियों का उद्देश्य क्या होगा? यही कि एक दिन वह परम ध्वनि सुनाई पड़ सके, कि साधक श्रावक बन सके।

उस एक हाथ की ताली को सुनो। वह निरंतर हमारे भीतर गूंज ही रही है। वह जो कृष्ण की बांसुरी बजाती हुई मूर्ति तुमने देखी मंदिरों में, वह बड़ा सुंदर प्रतीक है। कृष्ण का रंग भीतर के श्यामल रंग का प्रतीक है, वह ध्यान में दिखाई देता है। और बांसुरी प्रतीत है कि परमात्मा बांसुरी बजा रहा है। भीतर डूबकर वह बांसुरी सुनी जा सकती है। कृष्ण ने बांसुरी बजाई या नहीं बजाई यह बात गौण है। लेकिन वह बांसुरी आज भी बज रही है। कृष्ण प्रतीक हैं परमात्मा के; उनका सांवलापन प्रतीक है समाधि में दिखाई पड़ने वाले अंतर्आकाश के रंग का, और उनकी बांसुरी प्रतीक है भीतर सुनी जा रही आवाज की, उसी को अनहद या अनाहत नाद कहा है, हरि कहा है।

उपनिषद कहते हैं– हरि ओम् तत्सत्....हरि यानी परमात्मा ओम् है, यही परम सत्य है, तत् सत्। संत सुंदरदास कहते हैं– हरि तुम्हारे भीतर ही है, खुद के अंदर खुदा को खोजो–

तेरो तेरे पास है, अपने मांहि टटोल।
राई घटे न तिल बढ़े, हरि बोलो हरि बोल।।

सुंदरदास पुकारि के, कहत बजाएं ढोल।

चेति सकै तो चेत ले, हरि बोलो हरि बोल।।

जागने पर, चेतने पर इतना जोर इसीलिए दिया जाता है, क्योंकि मूर्च्छा में उस सूक्ष्म ध्वनि को न सुना जा सकेगा। अति–चैतन्य 'सुपरकांशियसनेस' की अवस्था चाहिए। और केवल सुनना ही पर्याप्त नहीं है, प्रेमपूर्वक सुनना होगा। भाव में डूबकर सुनना होगा। 'झरत दसहुं दिस मोती' के इक्कीसवें प्रवचन में ध्यान की परिभाषा करते हुए ओशो कहते हैं– 'वह जो भीतर सुना जाता है, उससे प्रीति लगाओ। उसे सुनो। उसे सुनने की विधि ध्यान है।'

आपने देखी होंगी बुद्ध और महावीर की मूर्तियां। बहुत बड़े–बड़े कानों वाली.... उनके कान कंधे को स्पर्श करते हैं। सामान्यतः ऐसे तो लोग होते नहीं! और चौबीसों तीर्थकरों की मूर्तियां उसी प्रकार की हैं। संयोग से कभी एकाध आदमी इस प्रकार हुआ हो, ऐसा माना भी जा सकता है। किंतु चौबीस आदमी एक से लम्बे कानों वाले, और बुद्ध के भी लम्बे कान..... मैं नहीं मानता की यह कोई तथ्यगत बात है। लेकिन मूर्तिकारों ने अपनी कल्पनाशक्ति का सहारा ले ऐसी मूर्तियां निर्मितकर सिम्बालिक रूप से यह बताना चाहा है कि ये लोग सुनने में इतने समर्थ थे, कि उन्होंने सूक्ष्मातिसूक्ष्म ओंकार के नाद को भी सुन लिया। प्रतीक की भाषा समझो। मूर्तिकार कैसे बताएं कि महावीर सुनने में बड़े कुशल हैं, कि बुद्ध अनहद–श्रवण में लीन हैं? बड़े अद्भुत कलाकार रहे, उन्होंने पत्थर की मूर्ति में भी इशारा कर दिया।

यदि हमारा मन शोरगुल से भरा है तब तो हमें बाहर की आवाजें भी ठीक से सुनाई नहीं पड़तीं, भीतर की कैसे सुनाई पड़ेंगी?

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक शास्त्रीय संगीतज्ञ का कार्यक्रम सुनने गया। उसकी पत्नी जबरदस्ती ले गई थी, नसरुद्दीन को तो संगीत में कोई रूचि न थी। मन मसोस कर जबरदस्ती बैठा है। और पत्नी प्रसन्नता में डोल रही है, संगीत के साथ झूम रही है। जब गायक लंबे–लंबे अलाप भर रहा था तब नसरुद्दीन की पत्नी ने पूछा– 'अहा, कितना सुंदर गीत गा रहा है! अद्भुत गायन शैली है..... नसरुद्दीन तुम्हें कैसा लग रहा है?' नसरुद्दीन ने कहा– 'जोर से बोलो, तुम क्या पूछ रही हो, मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा। वह दुष्ट चिल्लाना बंद करे तब तो मुझे सुनाई पड़े। तुम क्या कह रही हो... बोर हो गईं, घर चलना है क्या?' हमारे चंचल चित्त तो बाहर की ध्वनियों में भी नहीं डूब पाते, भीतर की ध्वनि में कैसे डूब पाएंगे! हम तो बाहर भी प्रोजक्शन्स कर लेते हैं, कुछ का कुछ सुन लेते हैं।

मैंने सुना है एक दिन नसरुद्दीन और चंदूलाल दोनों मित्र सुबह–सुबह घूमने जा रहे थे। एक पेड़ पर कोई चिड़िया आवाज करती थी– टूहू–टूहू–टूहू। नसरुद्दीन बोला, सुनते हो, कैसी धार्मिक चिड़िया है! कह रही है अल्लाह खुदा बरकत, अल्लाह खुदा बरकत। सुनो गौर से– अल्लाह खुदा बरकत की आवाज कर रही है। चूदंलाल ने तल्लीनतापूर्वक सुना, फिर हंसकर कहा– बड़े मियां, यह तुम्हारी धार्मिक मान्यता का प्रक्षेपण है। तुम ठहरे कट्टरपंथी मुसलमान।

यह अल्ला खुदा बरकत की आवाज नहीं कर रही है। ध्यान से सुनो, यह कह रही है– राम सिया दशरथ, राम सिया दशरथ। अल्लाह खुदा बरकत नहीं कह रही है; स्पष्टरूपेण राम सिया दशरथ का भजन गा रही है। दोनों में भारी विवाद छिड़ गया। झगड़ा करने का मौका मिले और हम न झगड़ें, ऐसा हो नहीं सकता। मौका न मिले तब भी झगड़ जाते हैं। दोनों में गंभीर दार्शनिक शास्त्रार्थ शुरू हो गया। कैसे तय हो कि चिड़िया क्या कह रही है? बेचारी चिड़िया से पूछ भी तो नहीं सकते।

उन्होंने सोचा कि कोई बात नहीं; रुकते हैं। जब कोई तीसरा व्यक्ति यहाँ से निकलेगा, हम उसे जज बना लेंगे। फिर वह जो कहे, हम वही बात मान लेंगे। थोड़ी देर में अपना ठेला धकाते हुए सब्जी बेचने वाला विचित्तरसिंह वहाँ से निकला। उसको रोका; 'ए सरदारजी, जरा सुनकर बताओ यह चिड़िया अल्लाह खुदा बरकत कह रही है, या राम सिया दशरथ?' विचित्तरसिंह ने आंख बंद कीं, गौर से सुना; और जवाब दिया कि 'क्षमा करें, आप दोनों ही पूर्वाग्रहों से भरे हैं– हिंदू व मुस्लिम धारणाओं से ग्रस्त हैं। वह चिड़िया न तो अल्लाह–खुदा–बरकत कह रही, न राम–सिया–दशरथ कह रही है। बेचारी बिल्कुल साफ–साफ पुकार रही है– आलू–प्याज–अदरक, आलू–प्याज–अदरक, आलू–प्याज–अदरक। क्या आप लोग बहरे हो.... समझ क्यों नहीं पा रहे?'

हम तो बाहर की ध्वनि भी ठीक से नहीं सुन पाते अपनी मान्यता और धारणा उस पर आरोपित कर देते हैं। भीतर की कैसे सुन पाएंगे? इस मन का शांत हो जाना, पूर्वाग्रहों से मुक्त हो जाना, समस्त धारणाओं से शून्य हो जाना, निर्विचार हो जाना जरूरी है। ऐसे डूब जाएं अपने भीतर जैसे–

धरती जब डूबे सागर में, एकाकार प्रलय होती है।<br>
डूबे भक्त प्रभु में इतना, जितना स्वर में लय होती है।<br>
जग में जब जीते, लोगों ने, हार हमेशा गले में डाले;<br>
जीत–हार के परे स्वयं पर, भीतर सच्ची विजय होती है।<br>
औरों के आगे झुकने से, अहंकार मिटता ही नहीं है;<br>
मैं और तू दोनों न बचें, तब ही असली विनय होती है।<br>
धरती जब डूबे सागर में, एकाकार प्रलय होती है।<br>
डूबे भक्त प्रभु में इतना, जितना स्वर में लय होती है।

धरती जब सागर में डूबती है, एक प्रलय होती है; और एक प्रलय तब होती है जब हमारा मन भीतर चेतना में डूब जाए, इस ओंकार में खो जाए। जब हमारा अहंकार, ओंकार में विलीन

हो जाए तब एक महाप्रलय होती है। जिंदगी में अद्भुत क्रांति घटती है। यह जो मकर–संक्रांति हम मनाते हैं, यह कोई असली क्रांति नहीं, केवल बाहरी भौगोलिक परिवर्तन है। वास्तविक आध्यात्मिक क्रांति भीतर घटती है; जिस दिन अहंकार, ओंकार में निमज्जित हो जाता है। एक नए ही व्यक्ति का जन्म होता है। पुराना व्यक्ति कहाँ खो गया, पता नहीं चलता। कुछ अद्भुत घटता है। उस घटना को ही ओंकार, नाम, शब्द, या अनहद पुकारा जाता है। वह बाजा तुम्हारे भीतर बज ही रहा है। वह तुम्हें बजाना नहीं है, सिर्फ सुनना हैं। उसी की तरफ संत शिरोमणि कबीर संकेत करते हैं– 'कहत कबीर सुनो भाई साधो बाजत अनहद ढोल रे।

मा ओशो प्रिया भी उसी ओर इशारा करते हुए गाती हैं–

अनहद बाजा बाजे रे आओ ता थइआ नाचें।
रफन–झुन, रफन–झुन, रफन–झुन।
मधुर मधुर धुन बाज रे, आओ ता थइआ नाचें।
ता थइआ नाचें, आओ ता थइआ नाचें।
अनहद बाजा बजे सुहाना, अनहद बाजा बजे सुहाना,
मधुर मधुर धुन बाज रे, आओ ता थइआ नाचें।

क्योंकि उसे सुनने के बाद फिर जिंदगी एक नाच है, एक गीत है, महासंगीत है। फिर जीवन एक उत्सव है। डूब जाओ तुम प्रभु में इतना, जितना स्वर में लय होती है। वह प्रलय महाजीवन की जन्मदात्री है। ब्रह्म के साथ एकाकार हो जाओ। ब्रह्म ही हो जाओ।

धन्यवाद।

## 7

# प्रार्थना में मांगना नहीं

**प्रश्न– क्या प्रार्थना भी ध्यान में डुबाने का माध्यम बन सकती है?**

ओशो शैलेन्द्र– निश्चित ही बन सकती है। इस पर निर्भर करेगा कि तुम्हारी प्रार्थना की परिभाषा क्या है। यदि तुम सोचते हो कि प्रार्थना यानी मांगना; जैसा का आमतौर पर सोचा जाता है, तो वह भिखारीपन वास्तविक प्रार्थना नहीं है। तुम परमात्मा से भी कुछ मांगने चले। ईश्वर से भी अपनी मर्जी पूरी करवाने चले। वह भिखमंगापन अध्यात्म का मार्ग नहीं बन सकता। वह असली प्रार्थना नहीं है।

ओशो की दृष्टि में मांगना नहीं बल्कि धन्यवाद देना, 'अहोभाव', ए फीलिंग ऑफ ग्रेटीट्यूड– अनुग्रह में डूबने का भाव वास्तविक प्रार्थना है। यदि ओशो के अर्थों में तुमने प्रार्थना की, तब तो वह समाधि में जाने का द्वार बन जाएगी। और यदि तुम भिखारियों की तरह गिड़गिड़ाकर मांगते रहे, तब वह अंतर्यात्रा का उपाय नहीं बन सकेगी। लेकिन समान्यतः प्रार्थना से हम मांगना ही समझते हैं। मांगने वाले को हम कहते हैं प्रार्थी। मांगना शिकायत–भाव से जन्मता है, जो बहिर्मुखी चेतना का लक्षण है। बाह्य जगत के प्रति तथाता और अनुग्रह–भाव अंतर्मुखी चेतना के लक्षण हैं।

मैंने सुना है, बादशाह अकबर एक सूफी फकीर का बहुत सम्मान करता था। कई बार उसके दर्शन के लिए गांव मिलने जाता था। एक बार गांव वालों ने फकीर से कहा कि सम्राट तुम्हारा इतना सम्मान करते हैं, कम से कम गांव के लिए एक छोटा से मदरसा, एक स्कूल मांग लो; हमारे बच्चों की पढ़ाई आसानी से हो सकेगी। उस फकीर ने कहा– नहीं, माफ करो। मुझे इस झंझट में न डालो। मैंने आज तक कभी किसी से कुछ नहीं मांगा। मांगना मेरा स्वभाव ही नहीं; लेकिन गांव के लोगों ने बहुत जिद्द की, तो उसने कहा कि ठीक; मन तो मेरा नहीं हो रहा, लेकिन आप लोग बहुत हठ कर रहे हैं तो फिर मैं राजदरबार जाता हूं। आज तक तो अकबर ही मेरे पास आया था, लेकिन जब मांगना है तो मुझे ही जाना चाहिए।

सुबह–सुबह के समय वह फकीर पहुंचा, बादशाह नमाज पढ़ रहे थे। वह पीछे जाकर खड़ा हो गया। नमाज पढ़ने के बाद अकबर ने अपने दोनों हाथ ऊपर उठाए और कहा– या परवरदिगार! मेरी शान–शौकत को और बढ़ा। मेरे साम्राज्य की सीमाएं बड़ी कर। या अल्लाह! मेरी सेनाओं को अधिक सबल कर, मेरी संपत्ति–शक्ति में और वृद्धि कर।

....जैसे ही ये शब्द सुने, वह फकीर मुड़ा और वापस जाने लगा। अकबर ने पलट कर देखा कि कौन मेरे पीछे आकर खड़ा था और कौन चला? देखा वह सूफी फकीर....... दौड़ के चरणों में गिर पड़ा, और कहा कि आप कैसे आए? पहली बार आप यहाँ आए– बिना बताए! और वापिस्त क्यों चले?

फकीर बोला– अब न पूछो तो ही अच्छा। क्योंकि तुम्हें बड़ी शर्मिंदगी महसूस होगी, मुझे चुपचाप चले ही जाने दो। मत पूछो कि क्यों आया था?

लेकिन अकबर नहीं माना, जिद्द की; तो उसने बताया– मैं आया था, गांव वालों के कारण। वे चाहते हैं कि गांव में एक मदरसा खोलने के लिए कुछ धन तुमसे मांगूं, लेकिन मैंने यहाँ देखा तुम खुद ही भिखमंगे हो। तुम खुद ही अभी मांग रहे हो कि तुम्हारी शान–शौकत, तुम्हारी सैन्य–शक्ति, राज्य की सीमा और संपत्ति बढ़े। तो मैंने सोचा कि एक भिखमंगे से मांगना तो शोभा नहीं देता। यदि स्कूल खुलवाने के लिए तुमसे थोड़ा–बहुत धन मैं मांग ले जाउंफगा तो कुछ तो तुम्हारा खर्च हो ही जाएगा। वैसे भी तुम्हारे पास इतना कम है! तुम्हारी दरिद्रता देखकर मुझे बड़ी दया आई और इसलिए मैं वापस लौट चला।

नहीं, मांगना प्रार्थना नहीं है। किंतु सामान्यतः हम इसी को प्रार्थना कहते हैं। तो इस प्रकार की प्रार्थना तो ध्यान का माध्यम न बन सकेगी। यह तो तुम्हारे मन की ही डिमांड, वासना और कामना है। जब कि ध्यान है मनातीत अवस्था, मन का अतिक्रमण

करना, 'गोइंग बियोंड द माइंड'। मन भिखारी है। प्रार्थना अहोभाव होना चाहिए, धन्यवाद का भाव! भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद हमेशा अपने तकिए के नीचे एक कागज पर यह प्रसिद्ध भजन लिखकर रखते थे; और रात सोने के पूर्व तथा भोर में जागने के पश्चात एक बार गुनगुना लेते थे–

'हरे राम हरे राम हरे राम कहिए, जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिए।
सीताराम सीताराम सीताराम कहिए, जाहि विधि राखे राम ताहि विधि कहिए।'

जीवन का परम स्वीकार। परमात्मा जैसे रख रहा है वैसे रहो। कोई शिकायत नहीं, कोई मांग नहीं। बस एक धन्यवाद का भाव.... कि जो मिला है, वह जरूरत से ज्यादा है। हमारी पात्रता से बहुत अधिक मिला है।

यह प्यारा जीवन हमें मिला, क्या हम इसके हकदार हैं? क्या हमारा कोई अधिकार है? न मिला होता तो कहीं शिकायत कर सकते थे? कैसे शिकायत करते, हम होते ही नहीं तो शिकायत कौन करता? जो उपलब्ध है, वह हमारी ग्रहणशीलता की क्षमता से बहुत ज्यादा है। अनुग्रह से भरो। जीवन के प्रति आभारी बनो। इस प्रकृति को, अस्तित्व को धन्यवाद दो। अगर तुम इसे 'प्रार्थना' कहते हो तो निश्चित रूप से ऐसी प्रार्थना तुम्हें मन के पार ले जा सकेगी। क्योंकि सारी कामनाएं मन की हैं, और जहाँ तुम निष्काम हुए, फलाकांक्षा–रहित हुए, वहाँ ध्यान में डुबकी लगी। जहाँ तुम कह सको 'जाहि विधि राखे राम, ताहि विधि रहिए' वहाँ तुम मन से मुक्त हो गए। वह तथाता की भावदशा ध्यान में डुबा सकेगी।

हाँ! एक बात और कहना चाहूंगा, केवल प्रार्थना ही मत करना, सुनना भी। तुम मंदिर जाते हो, अपनी बात तो कह देते हो और कहकर तुरंत वहाँ से भाग आते हो। तुमने परमात्मा की तो सुनी ही नहीं; कि वह क्या कह रहा है? अपने मन को शांत हो जाने देना, और फिर परमात्मा की भी सुनना! वह प्रति–उत्तर देता है। परमात्मा एक प्रतिध्वनि है, लेकिन वह प्रतिध्वनि बहुत सूक्ष्म है। खूब गौर से सुनोगे तो ही सुनाई देगी। अपने मन में निरंतर चलने वाली बकवास से कहना, विचारों के शोरगुल से कहना कि आवाजो, आज मुझे अकेला छोड़ दो।

आवाजो आज मुझे एकाकी छोड़ दो!
भीड़ से अलग भी तो मेरा अस्तित्व हो।
निजी इकाई मेरी स्व पर स्वामित्व हो,
कोलाहल नस–नस में भर गया निचोड़ दो।
आवाजो आज मुझे एकाकी छोड़ दो!

मुकुरों का सौदागर पाहन के देश में,
वैसे ही गीत घिरा है अगेह क्लेश में।
स्वर से संबंध मूक श्वासों का जोड़ दो,
आवाजो आज मुझे एकाकी छोड़ दो!

परेशान हूं अपनी ही जय–जयकार से,
लौटे आतिथ्य बिना क्षण मेरे द्वार से।
दर्प भरी गरिमाओ, कुंठा–घट फोड़ दो,
आवाजो आज मुझे एकाकी छोड़ दो!
शापित अतिरेक लिए महानगर बोध में,
यंत्रों में भटका हूं मैं अपनी शोध में।
मेरा यह अंध अहम् ओ विवेक, तोड़ दो,
आवाजो आज मुझे एकाकी छोड़ दो!

ओशो कहते हैं– 'भीड़ है तुम्हारे चारों तरफ और भीड़ तुम्हारे भीतर भी प्रवेश कर गई है। बाहर की आवाजें सुनते–सुनते भीतर भी तुम्हारे आवाजें–ही–आवाजें हो गई हैं। इसी शोरगुल में खो गई है तुम्हारे अंतरतम की आवाज, प्यारे की पुकार, जिक्र, सुधि, सुरति, स्मृति। तुम्हारे भीतर अब भी आवाज उठ रही है पर बड़ी धीमी, क्योंकि शोरगुल बहुत है। इस शोरगुल से अपने को काटना जरूरी है। इस शोरगुल से काटने का नाम ही ध्यान है। छोड़ो बाहर की आवाजें। और धीरे–धीरे भीतर से भी आवाजों को विदा दो। अलविदा कहो। नमस्कार कर लो। बहुत हो गया शोरगुल में रहते–रहते। भीतर सन्नाटे को बसने दो। भीतर थोड़ा शून्य पैदा होने दो। भीतर निर्विचार आने दो और उसी निर्विचार में तुम पहली बार सुनोगे उसका स्वर!' (प्रेम रंग रस ओढ़ चदरिया, प्रवचन–3)

मन की सारी आवाजों को विदा होने देना और तब तुम पाओगे एक अद्भुत आवाज में परमात्मा रिस्पोंड कर रहा है। प्रार्थना करके मंदिर से भाग न आना, थोड़ी देर बैठे रहना, प्रतीक्षा करना। थोड़ा सुनना भी, वह क्या कह रहा है? और तब तुम पाओगे प्रार्थना भी ध्यान का एक माध्यम बन गई। अगर मांगना ही है पुरानी आदतवश तो परमात्मा से बस इतना ही मांगना कि हे प्रभु, मेरे भीतर कोई मांग न रह जाए। जैसे तू रख रहा है वैसे ही मैं रह सकूं, इससे ज्यादा और कुछ मत मांगना। ये मांग अंतिम मांग होगी, ये प्रार्थना अंतिम होगी। उसकी सुनना कि वह क्या कह रहा है? हाँ! परमात्मा से इतना ही कहना कि मैं स्वयं हो सकूं, मैं जाग सकूं, मैं निर्विचार मौन में डूब सकूं, मैं तेरी ध्वनि को सुन सकूं, इतनी कृपा मुझ पर कर। मांगना ही है तो परमात्मा से परमात्मा को ही मांग लेना। उससे कम पर राजी मत होना। कहना– मैं जो बीज लेकर आया हूं, जो संभावनाएं देकर तूने मुझे इस जगत में भेजा है, वे संभावनाएं वास्तिकता में रूपांतरित हो सकें। ऐसी अर्चना ध्यान में डुबाने का माध्यम बन सकेगी। मांगना ही है तो बस इतना ही मांगना–

कुछ कथ्य हृदय में व्याकुल भटक रहा,<br>
हो सके इसे अभिव्यंजन का वर दो।<br>
कोई अनाम स्वर श्वासों में तिरता,<br>
हो सके इसे संबोधन का वर दो।<br>
हो गई अहिल्या पाहन कुंठा की,<br>
हो सके इस संवेदन का वर दो।

कुछ अद्भुत संभावनाएं तुम्हारे भीतर छुपी हैं उन्हें प्रगट होने दो। बस इतना ही मांगना, इससे ज्यादा कुछ और नहीं। और यह मांग कोई मांग नहीं है। यह याद रखना जो बीज तुम लेकर आए हो, अगर तुम ध्यान में डूबे, शांत हुए, वह धीरे–धीरे अकुंरित होने लगेगा। वह चैतन्य का एक पौधा बनेगा। एक दिन वह समाधि का विराट वृक्ष बनेगा, और उस वृक्ष पर संबोधि के फूल खिलेंगें। फिर बुद्धत्व के फूलों से करुणा की सुगंध झरेगी। सुवास फैलेगी।

यह तुम्हारे करने से न होगा, यह प्रतीक्षा भाव से होगा। अपनी तरफ से केवल इतना प्रयास करना– बीज जमीन में दबाने का, खाद–पानी सींचने का। उसी प्रयत्न का नाम ध्यान है। फिर धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करना, उस प्रतीक्षा को मैं कहता हूं प्रार्थना। जापान

के झेन फकीर कहते हैं– सिंटिग साईलेंटली डूईंग नथिंग, दि स्प्रिंग कम्स एंड दि ग्रास ग्रोस बाई इटसैल्फ। जो तैयारी तुम्हें करनी थीं, कर लीं। बीज बो दिया, पानी सींच दिया, बाग में बागुड़ लगा दी, खाद डाल दिया...... अब इंतजार करो; ये श्रद्धा से भरे हुए, प्रतीक्षातुर क्षण ही प्रार्थना के क्षण हैं। अब परमात्मा को कुछ करने दो। अब परमात्मा को कुछ कहने दो। अब तुम हो जाओ मौन! और सुनो उसकी। वह तुमसे कुछ कह रहा है। कोई अनाम स्वर सांसों में तिरता.....

कुछ कथ्य हृदय में व्याकुल भटक रहा,
हो सके इसे अभिव्यंजन का वर दो।
कोई अनाम स्वर श्वासों में तिरता,
हो सके इसे संबोधन का वर दो।

ओशो के अमृत वचन सुनो–

'प्रत्येक के भीतर परमात्मा की ध्वनि गूंज रही है। लेकिन हम भूल गए कैसे उससे संबंध जोड़ें? और भूल गए कैसे उसे जगाएं, पुकारें, उभारें, अभिव्यक्ति दें? जब तक परमात्मा तुम्हारे भीतर से प्रगट न हो सके जैसे कली फूल बनती। ऐसे तुम जब तक परमात्मा के फूल न बनो जाओ, तब तक तुम्हारा जीवन व्यर्थ है, व्यर्थ रहा है, व्यर्थ रहेगा। बहुत देर वैसी ही हो चुकी, अब जागो।'

छोड़ो अपनी कामनाएं और अपेक्षाओं से भरी प्रार्थनाएं। डूबो अहोभाव में, प्रतीक्षा में, सुनो प्रभु की अमृत वाणी। वही वास्तविक प्रार्थना है। और वैसी प्रार्थना ध्यान में डुबाने का माध्यम है, समाधि का साधन है।

धन्यवाद।

8

# मृत्यु भय से मुक्ति

**प्रश्न– आज एक सवाल पूछा है, श्री सीताराम सोनी ने; कि मैं एक भयभीत और उदास प्रकार का व्यक्ति हूं आत्मविश्लेषण से मुझे यह समझ में आया कि मेरा मुख्य डर का कारण मृत्यु–बोध है। इससे मुक्त होने का उपाय बताएं?**

ओशो शैलेन्द्र– सीताराम सोनी, मृत्यु–बोध उदासी में ले जा रहा है, इससे जरूर मुक्ति मिल सकती है। मृत्यु है तो मृत्यु का बोध किसी भी विवेकपूर्ण व्यक्ति को रहेगा ही। ऐसा होना भी चाहिए। मृत्यु–बोध स्वयं अपने आप में बुरा नहीं लेकिन उसकी वजह से दुखी और निराश होना जरूर बुरा है। हाँ मृत्यु बोध के कारण अमृत–अभियान पर निकलो। उसे खोजने निकलो जो अनश्वर है, जो शाश्वत है, जो सनातन है। कोई भी समझदार व्यक्ति अपने भीतर यही सोचेगा कि–

'माटी की काया से कोई, कैसे अमृत प्यार करे?
इस नश्वर संसार में कोई, क्यों असार को सार कहे?
जो दर्पण नयन जला डाले, क्यों उससे आंखें चार करे?
उसको हंसकर अपनाए क्यों, जिसको न हृदय स्वीकार करे?
माटी की काया से कोई, कैसे अमृत प्यार करे?
अभिलाषाओं का गला घोंट, कोई कब तक जी सकता है?

विष से प्याला भरकर कोई, क्या अमृत कह पी सकता है?
छल सकती हैं प्यासी आंखें, पर हृदय नहीं छल सकता है,
जल सकता बिन तेल के दीपक, बिन बाती कब जल सकता है?
विष को विष पीकर कह जाए, क्यों सुधा समझकर प्यार करे?
इस नश्वर संसार में कोई क्यों असार को सार कहे?
माटी की काया से कोई कैसे अमृत प्यार करे?

कोई भी प्रज्ञावान आदमी चौंकेगा, मृत्यु उसे जागाएगी। यदि जगत में मृत्यु न होती तो धर्म भी न होता; इस सत्य को याद रखना। मृत्यु हमारी दुश्मन नहीं है। ओशो ने अपनी समाधि पर स्वर्ण–अक्षरों में लिखवाया, कि न उनका कभी जन्म हुआ और न कभी मृत्यु, 11 दिसंबर 1931 से 19 जनवरी 1990 तक इस पृथ्वी ग्रह पर केवल विचरण किए। एक बार अपनी शाश्वत आत्मा का पता लग जाए तो फिर हम सिर्फ एक पर्यटक, एक टूरिस्ट की भांति, एक मेहमान की भांति इस दुनिया में आते हैं, और चले जाते हैं। हमारा दुख और उदासी का असली कारण है कि हम भूल गए हैं कि हम यहाँ चंद दिनों के मेहमान हैं। हम ऐसे रहने लगे जैसे हम सदा–सदा के लिए आए हैं। यह दुनिया एक प्रतीक्षालय है, बस एक वेटिंग रूम के समान है। रेलवे स्टेशन पर आप रुकते हैं न.... फिर अपनी–अपनी गाड़ी आती है और हम विदा हो जाते हैं! काश इस संसार में हम उसी भाव से रहे सकें, तब मृत्युबोध दिल को दुखाने का नहीं वरन आत्मा को जगाने का कारण बन जाएगा। आज तक जितने भी लोग जागे हैं, बुद्धत्व को पाए हैं, परमज्ञान को उपलब्ध किए हैं; उन सबके पीछे मृत्यु का ही हाथ है।

आपने सुनी होगी गौतम बुद्ध की कहानी– जा रहे थे अपने रथ पर सवार, रास्ते में देखा कुछ लोग एक लाश को मरघट ले जा रहे हैं। उन्होंने अपने सारथी से पूछा कि इस आदमी को क्या हुआ... यह खुद क्यों नहीं चलता? इसके पहले बुद्ध ने कभी कोई मुर्दा न देखा था, उन्हें पता ही नहीं था कि मौत भी होती है। बचपन से उन्हें इस भांति पाला–पोसा गया था कि मौत की खबर ही न मिले। सारथी बेचारा क्या कहे! बोला कि यह आदमी मर गया है। बुद्ध ने पूछा मरने का मतलब? सारथी ने समझाया कि अब यह चल नहीं सकता, बोल नहीं सकता, श्वास नहीं ले जा सकता, प्रेम नहीं कर सकता। अब इसको मरघट में ले जाकर जला देंगे।

बुद्ध ने सबसे पहले प्रश्न पूछा कि क्या मैं भी मर जाऊंगा? यह एक विवेकपूर्ण आदमी का लक्षण है कि वह दूसरे के जीवन में घटी घटना से भी अपने लिए शिक्षा ग्रहण कर लेता है। सारथी ने कहा– राजकुमार कैसे कहूं... अशुभ वचन बोलना तो नहीं चाहिए लेकिन झूठ भी नहीं कह सकता... मृत्यु तो आपकी भी होगी।

बुद्ध उसी रात संन्यस्त हो गए। जिसे मृत्यु दिखाई पड़ जाए वह जीवन के स्वप्नों में, भ्रमों में और उलझा नहीं रह सकता। वह जाग ही जाएगा।

विष को विष कहकर पी जाए क्यों सुधा समझ कर प्यार करे?

यह जिंदगी मृत्यु की ही एक लंबी कहानी है याद रखना। धीमे–धीमे, धीमे–धीमे रोज हम

मौत के करीब चले जा रहे हैं। यदि आपको मेडिकल साइंस की थोड़ी सी जानकारी हो तो आपको पता होगा कि हमारे मस्तिष्क में न्यूरॉन्स या नर्व–सैल्स हैं, तंत्रिका कोशिकाएं हैं। और पैदाइशी हम जितनी तंत्रिका कोशिकाएं लेकर आए हैं, जन्मने के तुरंत बाद प्रतिदिन उनमें से पांच हजार सैल्स की मृत्यु होने लग जाती है। एक भी नई सैल कभी दुबारा नहीं बनती। शरीर के अन्य सैल्स जैसे लीवर, त्वचा, किडनी आदि के पुराने कोष्ठ अगर नष्ट हो जाएं तो फिर नए बन जाते हैं। चमड़ी में घाव हो जाता है फिर भर जाता है। हड्डी टूट जाती है तो एक–दो माह में फिर जुड़ जाती है। आप अस्पताल में आधा लिटर रक्त दान कर आते हैं, 15–20 दिन में पुनः उतना खून निर्मित हो जाता है। एक क्यूबिक मिलीलिटर में 55 लाख रेड ब्लड सेल्स होते हैं।

इसके हजार गुने यानी साढ़े पांच अरब लाल रक्त कोष एक घन सेंटीमीटर में, और उसके भी हजार गुने अर्थात 55 खरब कोष एक लिटर खून में होते हैं। और ये गिनती तो केवल आर. बी.सी. की है; इनके अलावा अन्य कई प्रकार के सेल्स खून में होते हैं। आप रक्तदान न भी करें तो चार माह में ये सारे ब्लड सेल्स मर जाएंगे। किंतु आपको पता ही न चलेगा क्योंकि प्रतिक्षण हजारों नए सेल्स जन्म ले रहे हैं, पुरानों को रिप्लेस कर रहे हैं। यह प्रक्रिया देह के समस्त अंगों में चल रही है, लेकिन मस्तिष्क के जो नर्व सैल्स हैं कभी भी दुबारा नहीं जन्मते। पैदाइशी मां के गर्भ से हम जितने लेकर आए हैं बस उतने ही हैं। और उनमें से भी पांच हजार सैल्स प्रतिदिन नष्ट होते जा रहे हैं। हाँ, एक दिन ऐसा आएगा 70–80 साल होते–होते... कि जब मस्तिष्क के इतने सैल्स मर चुके होंगे कि वे शरीर को और न चला सकेंगे। तो ऐसा नहीं सोचना कि मृत्यु अंत में 70 साल बाद घटित होगी। मृत्यु क्षण–क्षण घटित हो रही है।

अभी आप मेरा प्रवचन सुन रहे हैं जब तक आप यह प्रवचन सुनकर जाएंगे, जब तक मैं इस प्रश्न का उत्तर पूरा करूंगा; आपके भीतर से कई लाख सैल्स नष्ट हो चुके होंगे। क्षण–क्षण मृत्यु घट रही है। मृत्यु को ऐसा नहीं सोचना कि वह जिंदगी की अंतिम घटना है। हम जिसे मौत कहते हैं वह इस लंबी मृत्यु की प्रक्रिया की पूर्णाहुति है। गौर से देखो तो यह जिंदगी एक क्रमिक मृत्यु है और जो इसके प्रति जागेगा निश्चित रूप से शुरूवात में तो भय लगेगा, बेचैनी पकड़ेगी; लेकिन वह भय ही जगाने वाला है।

सीताराम सोनी, तुमने बाल्मिकी की कहानी सुनी होगी– मरा–मरा जपते–जपते राम को जान लिया। मृत्यु का स्मरण करते हुए शाश्वत को पहचान लिया। लोग कहते हैं कि बाल्मिकी गंवार–अनपढ़ थे, इसलिए भूल गए और राम–राम की जगह मरा–मरा जपने लगे। यथार्थ हो कि नहीं, लेकिन ये कहानी बड़ी अर्थपूर्ण है– राम को जानने के पहले मृत्यु बोध अनिवार्य तत्व है।

जो मृत्यु के प्रति ही नहीं जागा वह अमृत के प्रति न जाग सकेगा। ज्ञान सदा 'कंट्रास्ट' में ही घटता है। काले मेघों के बीच सफेद विद्युत चमकती है। मीराबाई के जीवन में उल्लेख है कि जिन लोगों से उन्हें बहुत प्रेम था मायके में और ससुराल में भी, युवा अवस्था आते–आते उन सात लोगों की मृत्यु हो गई जिनसे सर्वाधिक लगाव था। स्मरण रहे कि मीरा के मीरा होने में उन सात प्रिय व्यक्तियों की मृत्युओं का हाथ है। मृत्यु जगाने वाला तत्व है, जीवन तो सुला देता

है। जीवन की समस्याओं, उलझावों और व्यस्तताओं में हम स्वयं को भूल जाते हैं। मौत हमें चौंकाती है, जगाती है; वैराग्य उत्पन्न करती है। संसार के मोह को तोड़ती है।

ओशो ने स्वयं अपने जीवन में घटी हुए मृत्युओं का उल्लेख किया है। जब वे सात साल के थे नानाजी की मृत्यु हो गई, नानाजी ने ही उन्हें बचपन से पाला–पोसा बड़ा किया था। उनसे बहुत प्रेम था। उस रात ओशो ने सोचा कि जिसे मैं इतना प्रेम करता था अब वह विदा हो गया... तो मेरे जीने से भी क्या फायदा! उस रात वे इसी भाव में सोए कि आज मैं भी समाप्त हो जाऊं... कि अब कभी वापस न उठूं। इसी भाव में डूबे सोए कि आज मैं मिट जाऊं। जिसे देखना था देख लिया, अब वह प्यारा नहीं रहा दुनिया में; मैं भी क्यों रहूं? मृत्यु तो नहीं आई लेकिन एक अदभुत घटना घटी– शरीर पड़ा था बिल्कुल शिथिल, गहन निद्रा में, मुर्दे की भांति; और भीतर चेतना सिकुड़कर अलग हो गई। पहली बार उन्होंने स्वयं का अशरीरी–अहसास किया कि मैं देह से पृथक और भिन्न हूं। छोटे बच्चे थे, कम उम्र थी; वे लोगों को ठीक से समझा तो न सके पर सुबह उठकर उन्होंने कहने की कोशिश की कि नानाजी की मृत्यु नहीं हुई है। रोने–धोने की जरूरत नहीं, किसी की मृत्यु होती ही नहीं है। भीतर कुछ है जो मर ही नहीं सकता।

जब ओशो 14 वर्ष के हुए तब उनकी एक सहेली थी– शशि। बहुत लगाव था उससे। टाईफाइड की बीमारी से उसकी मृत्यु हो गई, दूसरा झटका लगा... फिर चौंके, क्षणभंगुरता के प्रति जागे। जीवन से आसक्ति और क्षीण हुई। फिर 21 वर्ष की अवस्था होते–होते परम ज्ञान को उपलब्ध हुए।

मैं आपसे कहना चाहता हूं सीताराम सोनी, कि मृत्यु–बोध को निगेटिव ढंग से ना लें। एक विधायक दृष्टिकोण से सोचें। वह जगाने वाला तत्व भी साबित हो सकता है। ध्यान में डूबें, समाधि में चलें। आपको जानकर आश्चर्य होगा हम किसी व्यक्ति की कब्र बनाते हैं, उसको कहते हैं समाधि, और ध्यान की पराकाष्ठा को भी कहते हैं समाधि। इन दोनों में आपस में क्या तालमेल है? दोनों समान हैं। समाधि में अहंकार की मृत्यु होती है, वह भी देह–मृत्यु के समान है, महामृत्यु है। अपने मृत्यु–बोध को अमृत के प्रति जागने का उपाय बनाओ। यहाँ ओशोधारा में चौथे तल का कार्यक्रम 'अमृत समाधि' होता है जिसमें प्रयोग सिखाये जाते हैं कि कैसे अपनी चेतना को शरीर के बाहर निकाला जाए। बहुत अद्भुत प्रयोग हैं, ओशो ने इसका पूरा विज्ञान समझाया है। ओशो की एक किताब का शीर्षक है 'मैं मृत्यु सिखाता हूं' अंग्रेजी में दो किताबें हैं 'अंटिल यू डाई' और 'दि आर्ट आफ डाईंग' हिंदी में गोरखनाथ के वचन पर आधारित एक किताब है– 'मरौ हे जोगी मरो' उसमें मरने की कला सिखाई है। एक अन्य किताब है– 'राम दुवारे जो मरै' मलूक साहब का वचन है–

'राम दुवारे जो मरै, बहुरि न मरना होई' अर्थात जो जीते–जी भीतर मरकर उस अमृत को जानता है, समाधि में डूबता है; उसकी फिर मौत नहीं होती। एक पुस्तक का नाम है– 'मृत्योर्मा अमृतं गमय' 'फ्राम डैथ, टू डैथलेसनेस' यही एक साधक की यात्रा होनी चाहिए।

मृत्यु–बोध को विधायक दृष्टिकोण से देखना सीखो। ये मिट्टी की काया तो मिट्टी में मिल जाएगी। लेकिन तुम सिर्फ मिट्टी ही नहीं हो, तुम सिर्फ दीपक ही नहीं हो, तुम चिन्मय ज्योति भी हो। 'अमृत वर्षा' कैसेट में मा ओशो प्रिया का गीत है–

माटी से काया बनी, माटी में मिल जाएगी, आत्मा है परमात्मा बोलो कहाँ जाएगी?
जैसे थके राही को समझो आराम आ गया, राम आ गया, राम आ गया।
जीवन का प्यारा विश्राम आ गया, राम आ गया, राम आ गया।।

वह मरेगा जो पैदा हुआ है, खेल ऐसा ही हरि ने रचा है।
ज्यों ही जन्मा कोई, मौत होने लगी, अगले जीवन की तैयारी होने लगी।
ऐसा समझो कि कोई मुकाम आ गया, राम आ गया, राम आ गया।।

एक मुसाफिर कहीं तो रुकेगा, रुकने वाला कभी फिर चलेगा।
ज्यों ही सूरज उगा, शाम होने लगी, ज्यों ही जागा कोई, नींद आने लगी।
ऐसा समझो कि पथ का विराम आ गया, राम आ गया, राम आ गया।।

मौत घटना, न अंतिम विदा है, जिंदगी का ही एक सिलसिला है।
जैसे सूरज की धूप और पीपल की छांव, जैसे बाबुल का घर और प्रीतम का गाँव।
ऐसा समझो कि कोई पैगाम आ गया, राम आ गया, राम आ गया।।

देखो ओशो हैं लेने को आये, बुद्ध, नानक हैं बाहें फैलाये।
कितना आलोक है, कितना संगीत है, मृत्यु ही जिंदगी का परमगीत है।
ऐसा समझो कि राधा का श्याम आ गया, राम आ गया, राम आ गया।।

जो जीते–जी उस अमृत तत्व को जान लेते हैं, मृत्यु भी उनके लिए महोत्सव बन जाती है। संत कबीर साहब ने कहा है–

'जिस मरने से जग डरै, मेरो मन आनंद।
कब मरिहों कब भटिहों, पूरण परमानंद।।'

इसलिए कबीर साहब ने मौत का उत्सव मनाने के लिए कहा। वही ओशो ने भी हमसे कहा– मृत्यु को गंभीरता से न लो। उत्सव मनाओ। वह जीवन का शिखर है, परम सुंदर घटना है। जिंदगी की पराकाष्ठा है। लेकिन जो जीते–जी मौत के प्रति जाग गया, वही सौभाग्यशाली व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध हो पाया।

धन्यवाद।

# ओशो का विराट स्वप्न

# 9
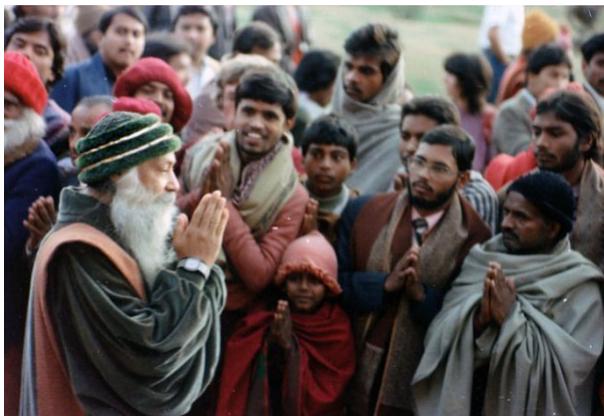
# ओशो के बारे में

**प्रश्न 1– आपके गुरूजी ओशो के बारे में थोड़ी जानकारी हमें दीजिए।**

ओशो शैलेन्द्र– ग्यारह दिसंबर 1931 को, मध्यप्रदेश के एक छोटे से गाँव कुचवाड़ा में ओशो का जन्म हुआ। बचपन से ही एक बहुत प्रतिभाशाली और विंद्रोही किस्म के बच्चे रहे। उनकी प्रतिभा भाँति–भाँति से उनके कृत्यों में प्रगट होती रही। वे कुछ भी विश्वास करने तथा मानने को तैया न थे। वे किसी रूढ़ी ओर परंम्परा को न मानते थे। उन्होंने हमेशा स्वयं ही जानने की कोशिश की। एक वैज्ञनिक दृष्टिकोण को लेकर वह चलते थे और उनके जीवन में क्रांति आई विशेषकर जब वे सात साल के थे, ओशो के नानाजी की मृत्यु हो गई, नानाजी से बहुत प्रेम करते थे। सात साल तक वे अपने माता–पिता के नहीं रहे, नाना–नानी के पास ही रहे थे।

नाना की मृत्यु से जो गहरा सदमा उन्हें लगा, उन्हें लगा कि यह जीवन अब जीने योग्य ही नहीं। उस रात उन्होंने सोचा कि आज मैं भी मर ही जाँऊ, ऐसा भाव करते–करते रात को वे सो गए कि अब नानाजी नहीं रहे दुनिया में जिनसे मैं इतना प्रेम करता था, अब मेरे जीने से ही क्या लाभ, मैं भी अब इस दुनिया में नहीं रहूँगा, मुझे कोई और रस नहीं है, मेरा प्यारा व्यक्ति चला गया, अब मैं भी विदा हो जाँऊ। ऐसा भाव करते–करते वह सो गए,

मृत्यु को निमंत्रण देते हुए। मृत्यु तो नहीं आई लेकिन उस रात विचित्र घटना घटी, उन्होंने स्वयं को शरीर से भिन्न जाना, अपनी आत्मा को पहचाना। वह एक झलक ही थी, लेकिन दूसरे दिन सुबह उठके उन्होंने घर के लोगों से कहा कि रोओ मत, नानाजी समाप्त नहीं हुए हैं, क्योंकि कोई समाप्त होता ही नहीं। यह बात मैंने स्वयं आज रात जानी मेरा शरीर नींद कि अवस्था में करीब–करीब मुर्दे जैसा पड़ार था और फिर भी भीतर मैं जागा हुआ था। मैं शरीर से भिन्न हूँ यह आज मैंने पहचाना, और सभी लोगा शरीर नहीं है, भीतर आत्मा हैं। उस सात साल के छोटे बच्चे ने यह अनुभूति की।

इक्कीस साल की उम्र में उनको परम ज्ञान उपलब्ध हुआ। जबलपुर में एक भंवर–ताल नामक बगीचा है, उसमें एक ''मौल श्री'' नाम के वृक्ष के नीचे, रात को दो बजे इक्कीस मार्च उन्नीस सौ त्रेपन को परम ज्ञान की घटना घटी। वह परमात्मा के साथ एक हुए। उस घटना को ही बुद्धत्व की घटना कहा जाता है। इक्की मार्च को इसलिए उनका संबोधि–दिवस या ज्ञान–दिवस मनाया जाता है। इस के बाद उन्होंने अपनी स्टूडेन्ट लाइफ में अपना अध्ययन पूरा किया। पोस्ट ग्रैजुएश्न किया। उसके बाद उन्होंने नौकरी जॉइन की। कोई आठ साल तक प्रोफेसर के पद पर विश्वविद्यालय में काम किया, दर्शन शास्त्र पढ़ाया। इस बीच वह सारे देश में घूम–घूमकर प्रवचन देते रहे और रूढ़ीवादी परंम्पराओं को चुनौतियाँ देते रहे।

उन्नीस सौ सत्तर के बाद उन्होंने नव संन्यास आंदोलन की शुरूवात की ओर ध्यान की नई–नई विधियाँ इजात कीं। नव संन्यास आंदोलन शुरू हुआ, बहुत से मित्र संन्यास में दीक्षित हुए और एक नई ही धारा की शुरूवात हुई। ओशो इस धारा के प्रथम तीर्थकर या कहलो पहले अवतार हैं। वे किसी पुरानी परंम्परा से संबंधित नहीं, वे किसी रूढ़ी से संबंधित नहीं, उनकी देशना बिल्कुल मौलिक और नई है। वे जीवन को समग्र रूप से स्वीकार करते हैं, उनका धर्म पलायनवादी धर्म नहीं। वे जीवन को स्वीकारते हैं, विधायक रूप से इस जीवन को हमें सुन्दर ढंग से जीना है और उनका जो संन्यास है, वह पलायनवादी नहीं, भगौड़ा नहीं, घर–परिवार, दुकान छोड़कर जंगल में नही चले जाना है, बल्कि अपनी घर गृहस्थी में रहते हुए ही ध्यान–समाधि की साधना करनी है, परमात्मा को पाना है। धर्म मे जगत में एक क्रांतिकारी मोड़ आया।

उन्नीस सौ चौहत्तर में श्री रजनीश आश्रम, पूना में स्थापित हुआ। उसके बाद ओशो का काम बहुत फैला, पश्चिम से हजारो–हजारों लोग प्रतिवर्ष आने लगे। पूना आश्रम ने खूब विराट रूप ले लिया। वह दुनिया का सबसे बड़ा मनोचिकित्सा का केन्द्र बन गया। करीब पाँच हजार लोग वहाँ नियमित ही रहा करते थे। सुबह–शाम, दोनो टाइम

ओशो प्रवचन दिया करते थे। उन्होंने दुनिया के सभी प्रसिद्ध संतों कि वाणी पर अपने अमूल्य व्याख्यान दिये। पुराने धर्मो में जो धूल–धबांस जम गई थीं उसे उन्होंने झाड़ा–पोंछा

और साफ किया, उनके भीतर जो हीरा था उसको फिर से निखारा, चमकाया और अपनी मौलिक दृष्टि उसमें जोड़ी। उन्होंने बुद्ध, महावीर, पतंजलि, कृष्ण, राम, गौरखनाथ, कबीर दास, पलटू दास, गुरू नानक देव, सूफी संतो, फकीरों, ताओ वादी संतो, पश्चिम के विभिन्न संतो उन सब की वाणियों पर अपनी मौलिक दृष्टि प्रस्तुत की और धर्म का एक नया रूप उजागर किया।

उन्नीस सौ इक्यासी में वे अमेरिका चले गए, वहाँ रजनीश पुरम नामक एक बहुत बड़े शहर की स्थापना की जो न्यू–यॉर्क शहर से तीन गुना बड़ा था, लेकिन वहाँ पर कुछ मुश्किल खड़ी हुढ़ इस आशातीत सफलता से कट्टरवादी ईसाई और अमैरिकन सरकार चिंतित हो गए। उन्होंने ओशो के उस कम्यून को नष्ट करने का षड्यंत्र रचा। ओशो उन्नीस सौ पच्चासि में भारत वापिस लौटे, उसके बाद वह विश्व भ्रमण पर निकल गए। करीब इक्कीस प्रजा तांत्रिक देशों में भ्रमण किया और उन्होंने सिद्ध किया कि कहीं भी प्रजातंत्र अभी तक आया नहीं है। कहीं भी बोलने की स्वतंत्रता नहीं है। इक्कीस देशों से उन्हें निष्कासित किया गया। हम कहने भर को शब्द हो गए हे, हम एक आदमी के विचार सुनने को भी राजी नहीं। अब ओशो किसी के साथ कोई जोर–जबरदस्ती तो नहीं कर रहे, किसी को पकड़–पकड़ के तो नहीं सुना रहे थे। वे अपने शिष्यों के बीच कुछ कह रहे हैं, इससे किसी का क्या बनता–बिगड़ता। लेकिन आश्चर्य हम जिन्हें लोकतांत्रिक देश कहते हैं, जो कहते हैं कि फ्रीडम ऑफ स्पीच, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है, वह भी काँप गए और हिल गए, ओशो की वाणी में ऐसा जादू था, ऐसा चमत्कार था।

ओशो के करीब पाँच हजार से ज्यादा प्रवचन ऑडियो और विडियो कैसेट्स पर उपलब्ध हैं, लगभग छः सौ पच्चास से ज्यादा किताबों में उनके प्रवचनों को संकलित किया गया है। करीब पचास से ज्यादा विश्व की भाषाओं में उनकी किताबें अनुवादित हो चुकी हैं। ओशो फिर वापस मुम्बई लौटे। कोई छः माह बॉम्बे में रूके, स्वामी सूरज प्रकाश जी यहाँ मौजूद हैं, पीछे बैठे हुए हैं, उनके घर सुमीलाम में ही छः महीने ओशो निवास किए। इसके पश्चात पुनः पूना में ही रहे। इस बीच उन्होंने मुख्य रूप से फकीरों कि ध्यान विधियों पर प्रकाश डाला। उन्नीस सौ नब्बे में, उन्नीस जनवरी को उन्होंने देह त्यागी। तब से लेकर अभी तक ओशो का काम निरंतर फैलता चला जा रहा है।

ओशो–धारा कि शुरूवात आज से करीब पाँच साल पहले हुई। आज पाँच मार्च को हम ओशो–धारा दिवस मना रहे हैं। ओशो के शिष्य स्वमी आनंद सिद्धार्थ, अब बाद में जो ओशो सिद्धार्थ कहलाते हैं, उनको बुद्धत्व प्राप्त हुआ था पाँच मार्च उन्नीस सौ संत्तानवे को 1 ओशो के जीवन में सात–सात सालों का बड़ा महत्व, मैंने अभी कहा था ना सात वर्ष में नानाजी की मृत्यु हुई, चौदह वर्ष में ओशो कि एक सहेली थी शशि नाम की, उसकी मृत्यु

हुई। फिर सात साल बाद इक्कीस वर्ष की अवस्था में उनको परम ज्ञान उपलब्ध हुआ। ओशो ने वर्णन किया है अपने जीवन में सात–साल बाद कुछ विशेष–विशेष परिवर्तन उनके जीवन में होते हैं, ठीक वैसी ही घटना फिर हुई, ओशो के शरीर से विदा होने के ठीक सात साल बाद ओशो सिद्धार्थ जी का बुद्धत्व घटा। फिर एक नया मोड़ आया सात साल ऐसा लग रहा था जैसे अंधकार छा गया हो, फिर प्रकाश हुआ, फिर धीरे–धीरे ओशो धारा निकली।

कहानी है न नील नदी की, कि नील नदी बहती है, फिर जमीन के नीचे नीचे बहती है, कुछ समय बाद अंडरग्राउण्ड चली जाती है, फिर जमीन के नीचे नींच बहती है कई मीलों तक, फिर कई मील बाद जाकर फिर उजागर होती है, जमीन के ऊपर प्रगट होती है। ठीक ऐसे ही कुछ हुआ, उन्नीस सौ नब्बे में लेके सत्तनवे तक, ओशो की वह जीवंत धारा अंडरग्राउण्ड हो गई थीं, भीतर–भीतर बह रही थीं, कुछ–कुछ सुगबुगा रहा था, ऊपर आने को तत्पर तैयार हो रहा था, जैसा हम एक बीज बोते हैं न ओर अंकुर आता है, तो थोड़े तो दिन लगते हैं, पंद्रह–बीस दिन वो अंधेरे में जमीन में रहता हैं। ठीक ऐसे ही सात साल बाद प्रस्फुटन हुआ सिद्धार्थ जी को बुद्धत्व का और ओशो–धारा कि शुरूवात हुई। इसलिए पाँच मार्च को आज हम ओशो–धारा दिवस मना रहे हैं। तब से इसमें, समाधि के विज्ञान में बहुत खोजबीन हुई है, खूब प्रयोग हुए हैं करीब पाँच हजार से ज्यादा लोग अभी तक समाधि के कार्यक्रम अटैन्ड कर चुके हैं। समाधि को जाना, परमात्मा को जाना। यही एक संक्षिप्त परिचय है ओशो का ओर ओशो–धारा का।

### क्या गुरू नहीं बदलना चाहिए?

**प्रश्न 2– आपके आश्रम में पिछले पाँच दिन से ध्यान शिविर में भाग ले रहा हूँ, बहुत आनंद आ रहा है, मेरी जिदगी सुधर गई है। कई तरह के ध्यान मैंने सींखे, प्रज्ञा की बहुत सी बातें सुनी चाहता हूँ कि आगे भी यहाँ आकर ध्यान और समाधि में डूबता रहूँ, किंतु मैंने एक और महात्मा जी से, आज से बीस वर्ष पहले दीक्षा ली थी, उनको अपना गुरू बनाया था कहा जाता है कि गुरू नहीं बदलना चाहिए। क्या मैं बिना गुरू बदले यहाँ आकर ध्यान और समाधि का ज्ञान ले सकता हूँ?**

ओशो शैलेन्द्र– अगर तुमने किसी से ज्ञान लिया तो वो गुरू बना गया, तुम कहो या न कहो इससे क्या फर्क पड़ता है। तुम ना कहो गुरू, कुछ और कह लो, अगर तुमने किसी से लिया ज्ञान, तो गुरू तो वह हो ही गया, तुम शिष्य हो ही गए और रही सवाल कि बीस साल पहले तुमने किसी से दीक्षा ली थी। गुरू कोई पति थोड़े ही है कि तुमने गुरू बदल लिया तो पतिवता ना रहे, कोई बेवफ़ा हो गए। याद रखना गुरू तुम्हें मुक्ति देने के लिए है, बंधन बांधने

के लिए नहीं। जो तुम्हें बाँधे, वो गुरू नहीं, तुम खुद ही छोड़ के भाग जाना उस व्यक्ति को जो तुम्हें बांधता हो। हम निकलते हैं मोक्ष कि तलाश में परम स्वतंत्रता की खोज में और हम कुछ छोटी–छोटी चीजों से बंध जाते हैं। कोई गुरू से बंध गया है, कोई शास्त्र से बंध गया है, कोई मंदिर से बंध गया है और निकले थे मुक्ति की खोज में। थोड़े जागो, कोई गुरू तुम्हें बाँधने के लिए नहीं हैं, जो बाँधे वो गुरू ही नहीं है। ना तो गुरू को बाँधना चाहिए, और ना शिष्य को बंधने के लिए तैयार होना चाहिए। तुम्हें होना चाहिए विद्रोही स्वभाव का, हाँ सीखने वाले जरूर बनो। जहाँ से जो मिले, वहाँ से वह सीखो। तो मैं आपसे यही निवेदन करूँगा, आपको यहाँ आनंद आ रहा है, मजा आ रहा है, पाँच दिन से आप अटैन्ड कर रहे हो तो पूर्णता से इसको सीखो। आपका सवाल ऐसे हुआ जैसे कोई पूछे कि मुझे एक फलाँ–फलाँ बीमारी हुई थी, बीस साल पहले मैंने एक डॉक्टर से इलाज करवाया था, फिर वो डॉक्टर भी समाप्त हो गए। वो बीमारी अभी भी मुझे बनी हुई है, क्या मैं आपकी दवाई लूँ ना लूँ। यदि आप जा के किसी डॉक्टर से ऐसा कहोगे तो वो आपके साथ क्या करेगा? , या तो कान पकड़ के आपको बहार निकाल देगा कि गैट आउट! और या फिर जो मैं बता रहा हूँ प्रिसक्रिब्शन, वो दवाई लो। तुमने बीस साले पहले इलाज कराया था, वो तो काम नहीं आया तभी तो तुम आए। यदि वो काम आ ही गया होता तो आने कि जरूरत ही क्या थी। और तुम कह रहे कि पाँच दिन से यहाँ बहुत आनंद आ रहा है, मग्न हो रहा हूँ ध्यान समाधि में, क्या पर्याप्त प्रमाण नहीं कि स्वास्थ्य घट रहा है। अब इसमें डूबो। ''बीती ताहिं बिसार दे, आगे कि सुध ले''। अब उन गुरू को क्षमा करो, उनको पकड़ के ना बैठे रहो, वो जा भी चुके बेचारे, वो तुम्हें नहीं पकडे, तुम्ही उनको पकड़े हुए हो। थोडी समझदारी बरतो जो व्यक्ति अब मौजूद ही नहीं है, वो तुम्हें कैसे मदद पहुँचा सकता है। जो डॉक्टर अब रहा ही नही दुनिया में वो तुम्हारा इलाज कैसे करेगा। लेकिन हमारा अहंकार बड़ा विचित्र है, इलाज कराने के मामले में तो हम बिलकुल साफ़ होते हैं, जो जिंदा डॉक्टर हो, उसके पास जाते हैं लेकिन आध्यात्म के मामले में हमारा अहंकार बड़ा सूक्ष्म खेल खेलता है, हम हमेशा मुर्दों कि पूजा करते हैं और जीवित का अपमान करते हैं। हम बड़े मुर्दा परस्त लोग हैं। मुर्दों कि पूजा करने वाले। मैं आपको झकझोरना चाहता हूँ, थोड़े जीवंत बनों, अभी जो घट रहा है, और तुम खुद कह रहे कि आनंद आ रहा है, मग्न हो रहा हूँ, पाँच दिन से, अब पूर्णता से इसमें डूबो। तुम पुराने गुरू कि बात को लेके इसमें भी डूब पाओगे। फिर तुम आधे–अधूरे रहोगे, आधा मन तुम्हारा वहाँ अटका रहेगा। वर्तमान के क्षण में जिओ। ओशो की महत्वपूर्ण शिक्षाओं में से एक है वर्तमान में जिओ और हमेशा जीवंत सतगुरू को खोजो। केवल वही मदद पहुँचा सकता है।

धन्यवाद।

# 10

# ब्रह्म सत्य, जगत भी सत्य

**प्रश्न– ओशो का स्वप्न क्या है? जिसे पूरा करने के लिए ओशोधारा कार्यरत है? पूछा है स्वामी चैतन्य प्रेमानंद ने।**

ओशो शैलेन्द्र– प्रेमानंद, ओशो का स्वप्न वही है, जो कृष्ण का था, जो राम का था, जो बुद्ध और महावीर का था, जो कबीर तथा मीरा का था, जो नानक एवं फरीद का था। समस्त जागृत पुरुषों का एक ही स्वप्न रहा है कि यह जगत और कैसे सुंदर हो? सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् की दिशा में कुछ कदम आगे और कैसे बढ़े? वही स्वप्न ओशोधारा का भी है। और जो तुमने पूछा है, कि स्वप्न को पूरा करने के लिए, इसमें मैं थोड़ा–सा शब्द–सुधार करना चाहूंगा। यह सपना इतना विराट है, कि यह पूर्ण से पूर्णतर की ओर आगे तो बढ़ता है, किंतु कभी भी समाप्त नहीं होता। कोई दिन ऐसा नहीं आयेगा जब यह पूरा हो जाएगा। क्योंकि जीवन सत्त प्रवाहमान है। जीवन विकास की प्रक्रिया का नाम है, हम और बेहतर से बेहतरीन की तरफ अग्रसर होते हैं, लेकिन कहीं भी पूर्ण विराम नहीं आता। निश्चित रूप से पहले से श्रेष्ठतर और सत्यतर और ज्यादा सुंदर जीवन होता चला जाता है। मनुष्य की चेतना और अधिक प्रेमपूर्ण और ज्यादा आनंदपूर्ण और ज्यादा चैतन्य से कैसे भरती जाए यही सपना है। यह धरती एक स्वर्ग कैसे बने। लेकिन पूरे होने की भाषा में मत सोचना क्योंकि जीवन निरंतर गतिमान है। जिंदगी विकास की प्रक्रिया का एक नाम है।

एक छोटी सी कहानी कहूं उससे तुम्हें ख्याल आ सके। कहानी काल्पनिक है लेकिन फिर भी अर्थपूर्ण– कि स्वर्ग के रैस्ट्रां में गौतम बुद्ध, कन्फ्यूशियस, और लाओत्से; ये तीन लोग एक टेबल पर बैठे हुए थे। एक अप्सरा जीवन की मदिरा एक खुबसूरत सुराही में लेकर आई, और उसने पूछा

कि क्या आप लोग इसका रसपान करेंगे? बुद्ध ने तो जीवन–मदिरा का नाम सुनते ही आंखें बंद कर लीं। उन्होंने कहा नहीं–नहीं, मैं दुख को पीना नहीं चाहता। उन्होंने अपना मुंह मोड़ लिया। बुद्ध का दृष्टिकोण जीवन के प्रति यही था– उन्होंने चार आर्यसत्य प्रतिपादित किये हैं, जिसमें पहला है कि जीवन दुख है।

कन्फ्यूशियस थोड़ा वैज्ञानिक चित्त का आदमी था। उसने कहा– बिना प्रयोग किए मैं कुछ कह न सकूंगा। एक जाम पीता हूं यदि मुझे अच्छा लगा तो और लूंगा। नहीं अच्छा लगा तो नहीं लूंगा। उसने बुद्धि के तल से सोच–विचार कर एकदम से इंकार नहीं किया। उस अप्सरा ने एक पैग जीवन की शराब ढाली। कन्फ्यूशियस ने पी। उसका स्वाद चखा और कहा– बुद्ध ठीक ही कहते हैं कि जीवन दुख है। कड़वा है। मैं और नहीं पीऊंगा।

उस अप्सरा ने लाओत्से से पूछा, आप लेंगे? चीन के महान संत लाओत्से ने उस अप्सरा से मदिरा की पूरी की पूरी सुराही ले ली और गटागट पी गये। फिर वे पीकर उठे और नाचने लगे और गीत गाने लगे। और तब उन्होंने बुद्ध और कन्फ्यूशियस से कहा– कुछ चीजें हैं जिंदगी में, जिन्हें आंशिक रूप से नहीं जाना जाता। एक छोटे से खंड को तुम परखोगे तो उससे पूर्ण का पता न चलेगा। एक घूंट पीकर जीवन की मदिरा का स्वाद मालूम नहीं हो सकता, यह तो पूरी ही पीनी होगी तभी स्वाद का पता चलता है। जीवन परम आनंद है, परम मस्ती है– परंतु उसकी संपूर्णता में।

चीन की यह काल्पनिक कहानी एक यथार्थ की तरफ इशारा करती है। अतीत के जो धर्म हुए हैं उनमें अधिकतर नकारात्मक दृष्टिकोण वाले हुए, त्यागवादी हुए, जीवन के विरोध में रहे। उन्होंने कहा जीवन को छोड़ो, भागो, यह त्याज्य है। त्यागने योग्य है। पुराने संन्यासी, तथाकथित साधु–महात्मा जीवन के खिलाफ थे। उन्होंने कहा जीवन दुख–ही–दुख है। और जब ऐसी धारणा का चश्मा लगाकर तुम जगत को देखोगे तो वैसा ही दिखाई देगा। यदि मैं एक लाल रंग कर चश्मा पहन लूं तो दुनिया मुझे लाल नजर जाएगी। यदि मैं हरा चश्मा पहन लूं तो मुझे सर्वत्र हरा रंग नजर आयेगा। यदि किसी व्यक्ति ने इस बात को मान ही लिया है, कि जीवन दुख है, तो उसके लिए जीवन दुख जो जाएगा। अतीत में 'लाईफ निगेटिव' जीवन निषेधात्मक धर्म मानव जाति पर छाये रहे। ओशो एक मौलिक क्रांति धर्म के जगत में लाए। उन्होंने कहा– संसार और संन्यास का समन्वय साधो। पदार्थ और परमात्मा का जोड़, अध्यात्म और विज्ञान का मिलन होने दो। जैसे जीवंत शरीर में आत्मा होती है– शरीर पदार्थ से निर्मित है और आत्मा चैतन्यरूप है तथा वे दोनों संग–साथ रह रही हैं तभी तो यह जीवन चल रहा है। अर्थात आत्मा और शरीर में कहीं कोई विरोध नहीं है। ठीक वैसे ही ब्रह्म और जगत भी एक हैं।

आदि शंकराचार्य जैसे आत्मवादियों ने कहा– ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या। और नास्तिक पदार्थवादी सदा से कहते रहे– ब्रह्म मिथ्या, जगत सत्य। ओशो कहते हैं– ब्रह्म भी सत्य और जगत भी सत्य। दोनों के अपने–अपने आयाम हैं, और दोनों ही सत्य हैं। इसमें से एक को इंकार नहीं किया जा सकता। पूर्वीय अध्यात्मवाद ने आत्मा व परमात्मा को तो स्वीकारा, पदार्थ और संसार को इंकार कर दिया। इसके विपरीत पश्चिमी विज्ञान ने पदार्थ को स्वीकारा, उस आयाम में बहुत खोज–बीन की, काफी अन्वेषण किये, मगर चेतना को इंकार कर दिया। इससे दो अधूरी संस्कृतियों का जन्म हुआ। ओशो पूरब और पश्चिम का मिलन हैं। वे कहते हैं हम बाहर तो समृद्ध

होकर जियें ही, भीतर भी शांत और समाधिस्थ होकर जियें। आंतरिक व बाहरी– दोनों दिशाओं में सम्पन्न बनें। निश्चितरूपेण पुराने धर्मों की तुलना में यह एक नया विकास सोपान हुआ। लेकिन मैं आपसे कहना चाहूंगा कि विकास का कहीं अंत नहीं होता। कहीं समापन नहीं होता। ओशो ने स्वप्न देखा कि धरती पर दस हजार परमहंस पैदा हो सकें। इसके लिए उन्होंने बहुत श्रम किया। एक विराट भूमिका निर्मित की, जिसके परिणामस्वरूप उनके जीवनकाल में ही सात लोगों को परमज्ञान उपलब्ध हुआ, बुद्धत्व के फूल खिले। उन्होंने लाखों हृदयों में बीज बोए। हजारों अकुंरित हुए, धीरे–धीरे सैकड़ों अंकुर विकसित, पल्लवित होना शुरू हुए। ओशो के विदा होने के सात साल बाद मार्च 1997 में स्वामी आनंद सिद्धार्थ परमज्ञान को उपलब्ध हुए। अब हम उन्हें ओशो सिद्धार्थ के नाम से जानते हैं। 25 जनवरी 2000 में को मा अमृत प्रिया के भीतर बुद्धत्व का फूल खिला जो अब मा ओशो प्रिया कहलाती हैं। 5 जनवरी 2001 को मेरे जीवन में परमज्ञान की घटना घटी।

इसी प्रकार ओशो की अनुकंपा से सिलसिला चल पड़ा...... धीरे–धीरे सहस्त्रों मित्र ओशोधारा में जुड़ते चले गये। विगत चार साल में लगभग 100 मित्र परमज्ञान को उपलब्ध हो चुके हैं। ओशो का सपना धीरे–धीरे साकार होने लगा। जो दस हजार बुद्धों की बात उन्होंने कही थी, लगता है अगले दस–बीस साल में संभव हो पाएगी। आप पूछते हैं ओशो का स्वप्न क्या है? ओशो का स्वप्न है जोरबा दि बुद्धा। जोरबा प्रतीक है– पदार्थवाद का, विज्ञान का, संसार का, भोग का। और बुद्ध प्रतीक हैं– ध्यान के, अध्यात्म के, परमात्मा के। इन दोनों का समन्वय ओशो का बड़े सा बड़ा कंट्रीब्यूशन, बड़े से बड़ा योगदान संसार को है। यही स्वप्न ओशोधारा में साकार हो रहा है। परमगुरु का संदेश धीरे–धीरे रूपायित होता चला जा रहा है। तुम पूछते हो ओशो का स्वप्न क्या है? एक छोटा सा गीत कहूं, शायद उससे आपको ख्याल में आए–

ऊ ये पूरब की हवा, हाय ये काले बादल।
रस भरी बूंदों से, भीगा हुआ शब का आंचल।
ला तेरा जाम, कहाँ है मेरी मै की बोतल?
आज पीने का मजा है, अभी पी ले, हाँ! पी ले।
मौत की छांव में एक पल, हाँ! एक पल जी ले।

क्षण–क्षण जीना ओशो ने हमें सिखाया, आज पीने का मजा हैं, अभी पी ले, हाँ, पीले। हाँ! मौत की छांव में एक पल, हाँ एक पल जी ले।

गम के मारे हुओ, आलम के तड़फाए हुओ।
और इस कस–म–कसे जीस्त से उकताए हुओ।
तोड़ के सब जंजीरें तुम्हारे पास आया हूं।
अपने पहलू में दहकता हुआ दिल लाया हूं।
बज्म में धूम मचाने के लिए आया हूं।
तल्खी–ए–गम को मिटाने के लिए आया हूं।
आज जी भर के पिलाने के लिए आया हूं।
शराब–ए–जिंदगी होश में लाती है, हाँ! इसे पी ले।
मौत की छांव में एक पल, हाँ! एक पल जी ले।

ओशो जिस शराब की बात कर रहे हैं, वह जीवन की मदिरा है और उसे पीकर होश आता है। शराब-ए-जिंदगी होश में लाती है, हाँ! इसे पी ले, मौत की छांव में एक पल, हाँ! एक पल जी ले। वर्तमान के क्षण को समग्रता से जीना सिखाना- यही ओशो का स्वप्न है कि संसार और संन्यास के बीच का विरोध समाप्त हो। भीतर और बाहर की समृद्धि- दोनों को मनुष्य उपलब्ध करे। बाहर विज्ञान सुविधाएं जुटाए, और भीतर धर्म शांति का उपाय करे- यह एक बिल्कुल नई बात ओशो ने जोड़ी- एक नये मनुष्य का जन्म हो!

ओशोधारा जो कार्य कर रही है वह इसी दिशा में किया जा रहा प्रयत्न है कि कैसे एक अखंड, एक संपूर्ण मनुष्य का जन्म हो! कैसे हम बाहर सुख सुविधाओं मे जिएं, और कैसे हम भीतर शांत, प्रफुल्लित, प्रेमपूर्ण व करूणामय होते चलें। यही ओशो का स्वप्न है। यही समस्त जागृत पुरुषों का स्वप्न रहा है, किंतु अतीत में इसका साकार होना मुमकिन नहीं था। आज के वैज्ञानिक युग में इसकी संभावना खुली है। और ऐसा मत पूछना- पूरा होने की भाषा में.... क्योंकि यह तो निरंतर पूर्ण से पूर्णतर की ओर बढ़ता चलेगा। जीवन में जो भी विराट है, जो भी मूल्यवान है, वह कभी पूरा नहीं होता। बस पूरे की तरफ और-और बढ़ता चलता है, अग्रसर होता जाता है। चरैवेति-चरैवेति! जीवन सरिता की धारा सदृश्य है, प्रवाहमान। जिंदगी तालाब नहीं है। इसीलिए तो इस आध्यात्मिक धारा को हमने ओशोधारा नाम दिया है। ओशो सिद्धार्थजी का लिखा यह प्यारा गीत सुनो-

आनंद, उत्सव, अमृत की धारा;
ओशो के सपनों की ओशोधारा।
कितनी पावन कितनी सुंदर ओशोधारा।

बुद्ध, कबीरा, नानक ने जो भी अबतक बतलाया;
ओशो ने उन सबको फिर से जान, हमें समझाया।
ओशो की करुणा से जन्मी ओशोधारा।

ओशो के इस सपने में है सब संतों का सपना;
इस सपने पर ही निर्भर है भावी जीवन अपना।
ताल तलैया में मत बांधो, गंगा-सी ये धारा।

गीता, वेद, पुराण, ग्रंथ सब काहे को अब पढ़ना?
काशी-काबा, तीरथ-तीरथ काहे को भटकना?
राम-नाम का भेद बताए सो सद्गुरु हमारा।

कई मील के पत्थर जीवन पथ पर मिलते जाएंगे;
मंजिल है निर्वाण, वहीं सद्गुरु त्रिविर ले जाएंगे।
ध्यान, समाधि और प्रेम का यहाँ है संगम प्यारा।

विदा लेने के पूर्व आओ, सब लोग मिलकर प्रेमभाव से गाएं- आनंद, उत्सव, अमृत की धारा; ओशो के सपनों की ओशोधारा। कितनी पावन कितनी सुंदर ओशोधारा....!

धन्यवाद।

# चित्त की चंचलता पर काबू

**प्रश्न– साधु–महात्माओं के भाषण–श्रवण व शास्त्रों के अध्ययन–मनन से चिंतन करने में तो कुशलता आ गई है, किंतु भगवान की याद में चित्त नहीं लगता। मेरी पत्नी कहती है कि मैं कुतर्की एवं विवादी प्रवृत्ति का हो गया हूं। इसी बात पर हम दोनों के बीच अक्सर झगड़ा हो जाता है यद्यपि मैं हमेशा सिद्ध कर देता हूं कि मैं कुतर्की एवं विवादी नहीं हूं। जीत सदा मेरी ही होती है। चंचल मन पर काबू पाकर प्रभु सुमिरन में डूबने की विधि समझाएं।– गणेश चतुर्वेदी**

ओशो शैलेन्द्र– गणेश चतुर्वेदी, तुम्हारी जीत से भी सिद्ध यही होता है कि तुम वास्तव में कुतर्की एवं विवादी हो। तुम्हारी पत्नी सीधी सरल होगी, वह हार जाती है। न ही चिंतन–मनन से, न भाषण–श्रवण से और न ही शास्त्रों के अध्ययन से बात बनेगी। प्रभु सुमिरन में मन नहीं लगेगा, क्योंकि प्रभु को तुम जानते ही नहीं। जिसे जानते ही नहीं उसे याद कैसे करोगे?

मुझे याद आ रहा है कि मैं एक बार एक महिला कालेज में बोलने के लिए गया था, वहाँ की प्रिंसपल साहिबा मुझसे यही सवाल पूछीं कि हरि स्मरण में चित्त नहीं लगता क्या करूं? मैंने उनसे कहा– एक छोटा सा प्रयोग करिये। आंख बंद करिये; अपने बेटे का स्मरण करिये। उन्होंने आंख बंद की, आधे मिनट बाद ही मैंने कहा– आंख खोलें। आप अपने बेटे को याद कर

पाईं? वे बोलीं– हाँ, निश्चित रूप से कर पाई। मैंने कहा– अब दोबारा आंख बंद करिये और मैं वर्णन करता हूं एक व्यक्ति का जो प्रफांस में रहता है। किस शहर में रहता है यह मुझे पता नहीं। उसकी लम्बाई–चौड़ाई कितनी है ये भी नहीं मालूम। उसका नाम क्या है, रंगरूप कैसा है, शक्ल–सूरत कैसी है, यह भी ज्ञात नहीं। उसके बारे में कोई भी जानकारी नहीं है। वैसा कोई आदमी वास्तव में है भी या नहीं है, यह भी पक्का नहीं है। आप उसकी याद करिये।

वे मुस्कुराने लगीं, बोलीं– जिसे जानतीं हीं नहीं, भला उसकी याद मैं कैसे कर सकतीं हूं?

मैंने उनसे कहा– ठीक.... फिर आप समझें। आप बेटे की याद कर पाईं क्योंकि आप बेटे का जानती हैं। और एक अज्ञात व्यक्ति का जिक्र मैंने किया, उसे आप स्मरण नहीं कर पाईं। क्योंकि आप उसे जानतीं हीं नहीं।

तुम कहते हो गणेश चतुर्वेदी, कि भगवान की याद में चित्त नहीं लगता, कैसे लगेगा तुम मन को गाली मत दो कि मन मेरा चंचल है। इसमें चंचलता का सवाल नहीं; तुम ईश्वर को जानते ही नहीं; अभी तुम्हें यह भी पक्का नहीं है कि वह है भी या नहीं! उसकी याद कैसी आयेगी? बिना जाने स्मरण नहीं हो सकता। बहुत साधक–साधिकाएं प्रभु स्मरण करने की नाकामयाब कोशिश में संलग्न रहते हैं, उससे एक ही परिणाम होता है; या तो वे स्वयं के प्रति एक निंदात्मक भाव से भर जाते हैं.... कि किये होंगे मैंने पिछले जन्मों कुछ पाप कर्म.... कि कुछ भूलचूक मेरी ही है.... कि साधु महात्मा समझाते हैं कि हरिस्मरण करो और मुझसे नहीं होता... . कि मेरा मन ही खराब है। ये मन की चंचलता मुझे भीतर डूबने नहीं देती।

नहीं, बेचारे मन का कोई कोई दोष नहीं है। न पिछले जन्मों के पाप बाधा खड़ी कर रहे हैं। न कर्मों का बंधन कोई व्यवधान उत्पन्न कर रहा है। तुम कुछ असंभव करने चले, प्रकृति के नियम के खिलाप जिसे तुम जानते नहीं; उसकी याद कभी नहीं कर सकते। पहले प्रभु को जानो। ध्यान समाधि और सुरति समाधि ओशोधारा के ये दो कार्यक्रम हैं जिसमें परमात्मा से परिचय होता है। हाँ, एक बार उसे जान लिया, फिर उसकी याद सदा बनी रहेगी। अभी तुम याद करने की कोशिश करोगे तो याद न आ सकेगी। और एक बार तुम प्रभु को पहचान लो, फिर तुम भूलना भी चाहो तो भूल न सकोगे। किसी शायर ने लिखा है–

नक्शे–ख्याल दिल से मिटाया नहीं कभी,<br>
तेरे सिवा कोई मुझे भाया नहीं कभी;<br>
वो सर जो तेरी राहे–गुजर में था सिज्दारेज,<br>
मैंने किसी कदम पे झुकाया नहीं कभी।<br>
नक्शे ख्याल दिल से मिटाया नहीं कभी...<br>
महराबे–जां में तूने जलाया था खुद जिसे,<br>
सीने का वो चिराग बुझाया नहीं कभी;<br>
बेहोश होके जल्द मुझे होश आ गया,<br>
फिर कोई नशा मुझ पे छाया नहीं कभीं।<br>
नक्शे ख्याल दिल से मिटाया नहीं कभी...

मरकर भी आयेगी ये सदा कब्र से मेरी–
अल्लाह, मैंने तुझको भुलाया नहीं कभी;
नक्शे–ख्याल दिल से मिटाया नहीं कभी,
तेरे सिवा कोई मुझे भाया नहीं कभी।

एक बार उसे जान लो, फिर वे भूलेगा नहीं। अभी स्मरण करना मुश्किल, बाद में विस्मरण करना मुश्किल हो जाएगा। फिर तुम कहोगे–

वो सर जो तेरी राहे–गुजर में था सिज्दारेज,
मैंने किसी कदम पे झुकाया नहीं कभी।
महराबे–जां में तूने जलाया था खुद जिसे,
सीने का वो चिराग बुझाया नहीं कभी;
नक्शे ख्याल दिल से मिटाया नहीं कभी...

'प्रेम रंग रस ओढ़ चदरिया' नामक प्रवचनमाला से ओशो का एक कोटेशन आपको सुनाता हूं– 'धर्म एक चिराग है। जो तुम्हारे भीतर जलने को बैठा है, तैयार है। धर्म एक आत्म–अनुभव है। न शास्त्र से मिलेगा, न सिद्धांत से मिलेगा, न ज्ञान से मिलेगा। इसलिए मेरा सारा जोर ध्यान पर है। ध्यान का अर्थ है अपने भीतर रूको, ठहरो। अपने भीतर जाने को प्रयत्न करो कितनी बार हो जाओगे। अपने भीतर जितनी गहराई तक जा सको, जाने का प्रयास करो। कितनी बार हार जाओगे, घबराना नहीं। हारना मत, चेष्टा जारी रखना। द्वार खटखटाए जाना। एक न एक दिन भीतर का द्वार खुलेगा। और एक क्षण को भी अगर झलक मिल गयी– बस, एक क्षण के बाद तुम्हारा जीवन दूसरा हो जाएगा। फिर तुम पृथ्वी पर हो, और पृथ्वी पर नहीं भी। फिर तुम संसार में रहोगे, और संसार में नहीं भी; क्योंकि परमात्मा तुम्हारे भीतर रहेगा। तुम कहीं भी रहो, परमात्मा तुम्हारे भीतर रहेगा। तुम्हें घेरे रहेगा। फिर खिलेंगे हजार–हजार फूल।'

परमात्मा शब्द का अर्थ भी समझ लेना। परमात्मा यानि कोई आकाश में बैठा व्यक्ति नहीं। कहीं स्वर्ग में.... सात आसमानों के पार, नहीं! परमात्मा यानि– परम–आत्मा। परमात्मा शब्द पर गौर करो– 'दि अल्टीमेट सेल्फ' आत्मा का परम रूप। वह तुम्हारे भीतर ही विराजमान है। वह ओंकार रूपी ब्रह्मनाद तुम्हारे भीतर गूंज ही रहा है। उसमें डुबकी मारो। उसी का नाम सुरति समाधि है। वही सहजयोग है। एक बार उसे जान लिया, फिर कभी न भूल सकोगे। इसलिए तो संतों ने उसको सुरति कहा है।

सुरति बना है स्मृति से, उसकी याद एक बार आ भर जाए वह तुम्हारा ही वास्तविक स्वरूप है। परमात्मा हमसे भिन्न और जुदा नहीं, खुद के भीतर ही खुदा बैठा है। ध्यान अपने भीतर डूबने का नाम है– कैसे हम निर्विचार हो जाएं, कैसे हम शांत हो जाएं, थोड़ी देर के लिए कैसे संसार की चिंता–फिकर से मुक्त हो जाएं। जब मन विचारों के कोलाहल से मुक्त होता है, विचारों की भीड़ विदा होती है; उस परम एकांत में, उस महाशून्य में परमात्मा की आवाज सुनाई पड़ती है। फिर उस आवाज में धीरे–धीरे और गहराईयां मिलने लगती हैं। गहराईयों पर

गहराईयां मिलती चली जाती हैं और एक दिन ऐसा आता है हम उसके साथ एक हो जाते हैं। ऐसे ही क्षणों में उपनिषद के ऋषियों ने कहा होगा– अहम् ब्रह्मस्मि। मैं ही परमात्मा हूं। एक बार वह घटना घट जाए फिर वह कभी भूलेगी नहीं।

स्वयं को जानो। साक्षी भाव में डूबो। भीतर के उस शब्द या नाम को ही सच्चा नाम पुकारा जाता है। नानक कहते हैं– 'एक ओंकार सतनाम' ओंकार में तल्लीनता प्राप्त करके फिर तुम पाओगे दिन–रात उसका सुमिरन बना ही हुआ है। अभी आप मा ओशो प्रिया का मधुर कीर्तन सुन रहे थे– 'हरे राम हरे राम, राम राम बोलो; वाहेगुरु वाहेगुरु, सतनाम बोलो।' इन तीन बातों में धर्म का सारा सार–सूत्र आ जाता है। सद्गुरु की कृपा से भीतर का वह नाम, सतनाम, परमात्म–ज्ञान होता है। उसी का संतों ने राम भी कहा है। वह भीतर की ध्वनि राम से मिलती–जुलती है। यह कह लो ओम् से मिलती–जुलती है। उसे एक बार जान लो, फिर तुम्हार जीवन धन्य–धन्य हो जाएगा।

नहीं, गणेश चतुर्वेदी शास्त्र–पठन से न होगा, अध्ययन से न होगा, चिंतन–मनन से न होगा, और अपने चंचल मन पर काबू पाने की कोशिश मत करना, उस क्रिया में तुम हमेशा ही असफल हो जाओगे। चित्त पर काबू नहीं पाया जा सकता। हाँ, चित्त का साक्षी हुआ जा सकता है। यदि तुमने नियंत्रण करने की कोशिश की तो मन नियंत्रण में कभी नहीं आयेगा। चंचलता उसका स्वभाव है। वह पारे की तरह है, तुम उठाने की कोशिश करोगे तो वह छिटक–छिटक जाएगा। नहीं, वह गलत कोशिश मत करना। बहुत लोग ध्यान के नाम पर एकाग्रता साधने की कोशिश करते हैं, और सदा असफल होते हैं। और धीरे–धीरे उन्हें लगने लगता है, कि हमसे न हो सकेगा। हम इस योग्य नहीं... हम पात्र नहीं.... लेकिन वे जो कोशिश कर रहे हैं वह असंभव है, चित्त पर नियंत्रण नहीं पाया जा सकता। काबू नहीं करना है, चित्त के साक्षी होना है। तुम चित्त से भिन्न हो।

वह जो विचारों का ऊहापोह चल रहा है, चुपचाप उसे देखते रहो। देखते–देखते तुम द्रष्टा हो जाओगे, साक्षी हो जाओगे। एक विटनेसिंग कौंसेसनेश का जन्म होगा– एक शांत चैतन्य, निष्कंप चैतन्य; कृष्ण जिसे कहते हैं– स्थितप्रज्ञ होना। जैसे दीपक की लौ बिल्कुल स्थिर हो जाए, डंवाडोल न हो, तुम्हारी चेतना वैसी है। करनी नहीं है, वैसी है ही।

मन का स्वभाव चंचलता है। चेतना का स्वभाव स्थिरता है। लेकिन तुम मन के साथ आइडेंटिफाइड हो गये। तुमने तादात्म्य बना लिया। और तुम्हारे ग्रंथ–अध्ययन, चिंतन–मनन, और महात्माओं के भाषण–श्रवण, तुम्हारे मन को और–और विचारों से भरेंगे, पहले से भी अधिक चंचल कर देंगे। तुम तो ध्यान में डूबो। ध्यान ही एकमात्र मार्ग है। शून्य हो जाओ, फिर भीतर पूर्ण का अवतरण होता है। एक बार परमात्मा को जान लिया... बस फिर उसकी याद बनी ही रहती है, फिर तुम भी कह सकोगे कि हरे राम, हरे राम, हरे राम बोलो; वाहे गुरु वाहे गुरु सतनाम बोलो।

धन्यवाद।

# वास्तविक धर्म क्या है?

**प्रश्न– आज का सवाल पूछा है श्री चेतन उपाध्याय ने– दुनियां में दर्जनों धर्म, सैकड़ों संप्रदाय, हजारों ग्रंथ, व लाखों गुरुओं की भीड़ है; जो सब परस्पर विपरीत बातें समझाते हैं। मेरे जैसा सामान्य व्यक्ति कैसे पहचाने कि वास्तविक धर्म क्या है?**

ओशो शैलेन्द्र– चेतन उपाध्याय, वास्तविक धर्म जीवन जीने की कला का नाम है। कैसे जीवन में सौदर्य व आनंद की वृद्धि हो, माधुर्य व शांति विकसित हो, कैसे तुम्हारे भीतर प्रफुल्लता के फूल खिलें, कैसे तुम ज्यादा करूणा से भरो, कैसे तुम ज्यादा मैत्री भाव और मस्ती से भरो, सत्यं–शिवं–सुंदरम् से ओतप्रोत जीवन जीने की कला ही वास्तविक धर्म है। ये उसकी कसौटियां होंगी।

देखना, क्या तुम जीवन प्रति एक विधायक दृष्टिकोण से भर रहे हो। जिन्हें हम तथाकथित धर्म कहते हैं धर्मों की भीड़ कहते हैं, उनमें धर्म कम राजनीति ही ज्यादा है। उनमें से अधिकतर जीवन के प्रति बहुत ही नकारात्मक भाव से भरे हुए हैं। वे जीवन को और अधिक दुख से, कष्ट से, पीड़ा से भरते हैं। त्याग और तपस्या धर्म नहीं है। जीवन के प्रति संवेदनशीलता को बढ़ाना और ज्यादा चैतन्य होना है, सामान्य से ज्यादा जागरूक 'सुपरकौंसियस' होना है, ताकि जीवन का हम महाभोग कर सकें। धर्म त्याग नहीं, महाभोग है। साधारण से साधारण जीवन में भी हम परम आनंद को उपलब्ध कर सकें, ऐसी कला का

नाम वास्तविक धर्म है। तुम टटोलना, देखना अपने भीतर कि क्या वास्तविक धर्म में गति हो रही है? और बाहर जहाँ तुम खोज रहे हो कि सच्चा गुरु कौन है, तो ऐसे व्यक्ति को खोजना जो तुम्हें आनंदित, प्रेमपूर्ण, शांत, उत्सवमय जीवन जीने की कला सिखाये। जो कहे–

मुसीबत हंसी में उड़ाता गुजर जा, खुशी के तराने सुनाता गुजर जा।
मुहब्बत के दरिया बहाता गुजर जा, जमाने से गाजा–बजाता गुजर जा।

मजे जिंदगी के उठाता गुजर जा, हंसते–हंसाते, मुस्कुराता गुजर जा।
ख्यालों की दुनिया जलाता गुजर जा, जहां को समझ के तमाशा गुजर जा।

खुद ही खुदी को मिटाता गुजर जा, आंखें खुदा पर टिकाता गुजर जा।
जीवन में मस्ती लुटाता गुजर जा, सरे गम पे ठोकर लगाता गुजर जा।

जगता–संभलता, जगाता गुजर जा, गुजर जा जमीं को नचाता गुजर जा।
मुसीबत हंसी में उड़ाता गुजर जा, खुशी के तराने सुनाता गुजर जा।

वास्तविक धर्म का सूत्र तो यही होगा– 'जगता, संभलता, जगाता गुजर जा'। खुद भी जागो और दूसरों को भी जगाओ। संभलो, मूर्च्छा के गड्ढे में फिर न गिरना। इतने जादा चैतन्य बनो कि तुम्हारा जीवन एक मुस्कान हो जाए। 'मोहब्बत के दरिया बहाता गुजर जा' यदि तुम्हारे जीवन में प्रेम की सरिता बहती हो, तो जानना तुम धार्मिक हो। यदि तुम रूखे–सूखे हो गए, त्यागी–तपस्वी हो गए, शास्त्रों के बोझ से लद गए, तो जानना वास्तविक धर्म नहीं घटा। धर्म यानि स्वभाव! और आनंद हमारा स्वभाव है। आनंद की कसौटी पर स्वयं को कसते रहना, शांति के थर्मामीटर से खुद की गहराई नापते रहना।

मैंने सुनी है एक चीनी कहानी तीन हंसते हुए संतों की, उनके कोई नाम नहीं जानता था, उन्होंने कभी अपना नाम बताया नहीं। उनसे कुछ भी पूछो, वे हंसने लगते। एक गांव में थोड़े दिन ठहरते, हंसी की लहर चारों तरफ फैल जाती। फिर वे दूसरे गांव चले जाते, बीच बाजार में खड़े हो जाते और हंसने लगते। उन्होंने कभी किसी दार्शनिक सवाल का जवाब नहीं दिया। हंसी ही एकमात्र उनकी उत्तर थी। जहाँ वे खड़े हो जाएं, वहाँ मुस्कुराहट फैल जाए। उन तीन हंसते हुए संतों को देखकर भीड़ भी हंसने लगे। धीरे–धीरे पूरे गांव में एक हंसी की एक लहर फैल जाए। उनका नाम तो किसी को पता नहीं था, 'थ्री लाफिंग सेंट्स' तीन हसंते हुए संत वे कहलाते थे। कोई उपदेश उन्होंने कभी दिया नहीं। एक ही उनका संदेश था– 'हंसो' वह भी उन्होंने शब्दों

में नहीं कहा था, अपने जीवन में ढालकर बिना भाषा के कहा था।

फिर एक दिन ऐसा हुआ, वृद्धावस्था में एक संत की मृत्यु हो गयी। गांव के लोग बहुत उत्सुक हुए। आज तो निश्चित ही मृतक के शेष दो मित्र उदास और दुखी होंगे! वे गए उनकी झोंपड़ी पर, लेकिन देखा कि दो संत बाहर बैठे मुस्कुरा रहे हैं, हंस रहे हैं। और वे कहने लगे कि हमारा तीसरा मित्र हमसे आगे निकल गया। हमें हंसते हुए छोड़के वह अकेला ही विदा हो गया। और उसने जाते–जाते एक वचन हमसे लिया है– 'कि जब मरघट पर उसकी चिता को जलाया जा रहा हो, तो उसके पहले जो रीति–रिवाज था कि लाश को नहलाया जाए, नये कपड़े पहनाएं जाएं; उसने मना किया है– कि नहलाना मत, मुझे दूसरे कपड़े मत पहनाना, जो वस्त्र मैं पहने हुए हूं ऐसा ही मुझे श्मशान घाट ले जाना। मरघट जाते हुए.... अर्थी ढोते हुए भी उसके दो मित्र हंसते रहे। धीरे–धीरे वे गांव के लोग जो शोक व्यक्त करने उदास चेहरे लिए आए थे, यहाँ शोक व्यक्त करने का मौका न देखकर वे भी धीरे–धीरे प्रसन्न हो गए। प्रसन्नता भी इन्फैक्सस होती है। जैसे बीमारियां फैलती हैं, वैसे ही खुशी भी फैलती है। सारा माहौल ही बदल गया, ऐसा नहीं लग रहा था कि किसी की मृत्यु में आए हैं, ऐसा लग रहा था जैस कोई उत्सव होने वाला है।

....और फिर बहुत अद्भुत घटना घटी। जब चिता में आग लगाई गई, तब अचानक फुलझड़ी पटाखे जलने शुरू हो गए, वह जो आदमी मर गया था, वह अपने कपड़ों में फुलझड़ी पटाखे, अनारदाने छुपाकर मरा था। जब चिता से फुलझड़ियां छूटने लगीं, पटाखे फूटने लगे तब तो बहुत हंसी की तरंगें फैल गईं। उदास से उदास आदमी भी प्रसन्न हो गया। वे लोग कहने लगे अद्भुत था वह व्यक्ति जीते जी भी हमको हंसाता रहा, और मृत्यु के बाद भी हमें हंसा रहा है।

तुम पूछते हो चेतन उपाध्याय– कि कैसे पहचानें कि वास्तविक धर्म क्या है? जहाँ हंसी हो, जहाँ खुशी हो, जहाँ प्रेम हो, जहाँ आनंद हो, जहाँ मस्ती हो, वहाँ जानना की वास्तविक धर्म घट रहा है। जहाँ सद्‌गुरु मौजूद होते हैं वहाँ सदा धर्म जीवंत होता है। लेकिन अक्सर सद्‌गुरु के विदा होने के पश्चात फिर उदास, रुग्ण और मनोरोगियों की भीड़ इकट्ठी हो जाती है। और वे धर्म को एक नकारात्मक रूप दे देते हैं। फिर पंडित–पुरोहित इकट्ठे हो जाते हैं, वे शास्त्रों की व्याख्या करने लगते हैं। और बड़ा गंभीर माहौल निर्मित कर देते हैं। फिर वाद–विवाद, सिद्धांत, फिलॉसफी और संप्रदाय निर्मित हो जाते हैं। कट्टरपंथी लोग आ जाते हैं, और झगड़े–फसाद शुरू कर देते हैं। लड़ाईयां और युद्ध छिड़ जाते हैं।

जितने भी जागृत पुरुष हुए हैं, याद रखना उन्होंने तो सदा हमें आनंद के सूत्र दिए, लेकिन हमारी समाज व्यवस्था, संगठन प्रणाली, हमारी नासमझी, हमारी मूढ़ता कुछ ऐसी है, कि हम हर चीज में से दुख निकाल देते हैं। अमृत में से भी विष ढूंढ़ लेने में हमारी कुशलता का कोई मुकाबला नहीं है। इस बात के प्रति सजग होना, सावधान होना।

तुम पूछते हो कि दुनियां में दर्जनों धर्म और सैकड़ों संप्रदाय हजारों ग्रंथ व लाखों गुरुओं की भीड़ है, जो सब परस्पर विरोधी बातें समझा रहे हैं, और मुझ जैसा सामान्य व्यक्ति कैसे पहचाने की वास्तविक धर्म क्या है?

मैं तुम्हें कसोटी दे रहा हूं पहचानने की। जहाँ दुख हो, जहाँ पीड़ा हो, जहाँ त्याग की बाते हों, जहाँ तपस्या का गुणगान हो, जहाँ उदासी आदृत हो, जहाँ ह्रदय में फूल न खिल पाते हों, जहां तुम्हारे सिर पर बोझ बढ़ जाए; वहाँ जानना कि वास्तविक धर्म नहीं है। कुछ बात भटक गई, कुछ रास्ता बदल गया। यह परम मंजिल तक नहीं जा रहा क्योंकि परमात्मा तो सच्चिदानंद है। वह परम आनंद रूप है, तो उसकी तरफ जाने वाला मार्ग जिसे हम धर्म कहते हैं; वह भी आनंद से ओत-प्रोत होना ही चाहिए। तभी तो वह परमानंद तक पहुंचा सकेगा।

कोई साधु उपवास के नाम पर भूखा मर रहा है, या कोई महात्मा कांटों की सेज पर लेटा है, कि कोई दुष्ट अपने-आप को कोड़े मार रहा है, या कोई हिंसक अपने केश-लुंचन कर रहा है, अथवा अपनी घर-गृहस्थी व प्रियजनों को छोड़ जंगलों में भटक रहा है, यह आदमी कैसे परमानंद को उपलब्ध होगा? इसने तो जीवन के साधारण सुख भी छोड़ दिए। यह तो साधारण संसारी से भी गई-बीती स्थिति में है। साधारण संसारी भी कभी-कभी प्रसन्न दिखाई देता है। लेकिन साधु-महात्माओं में विद्वान-मुनियों में प्रसन्न लोग ढूंढ़ने मुश्किल हैं।

....तो याद रखना, आनंद कसौटी है। और उस परमांनद को पाने का उपाय क्या है? दो ही उपाय हैं- 'एक ध्यानयोग, दूसरा भक्तियोग।' या संक्षेप में कह लो- पहला होश और दूसरा प्रेम। एक तो है कि हम अपने अंदर कौंसेसनेश को इभाल्व करें, चैतन्य का विकास करें, भीतरी जागरूकता को प्रखर करें। और दूसरा मार्ग है कि हम अपने भीतर प्रेम को परिमार्जित करें। पुरुषों के लिए ध्यान मार्ग आसान पड़ेगा। स्त्रियों के लिए प्रेम मार्ग आसान पड़ेगा। ध्यान मार्ग यानि होश का मार्ग और प्रेम मार्ग यानि भक्ति का मार्ग। जो तुम्हें सहज, सरल और सुगम लगता हो उस रास्ते पर चलो। अतंतः तो दोनों मिश्रित हो जाएंगे। तुम जितने होशपूर्ण होने लगोगे, उतने ही प्रेम और करूणा से भी भरने लगोगे। या इसका विपरीत भी सच है- जितने तुम प्रेमपूर्ण होने लगोगे, भक्ति भाव में जीने लगोगे; उतनी ही एक सूक्ष्म संवेदनशीलता, एक सूक्ष्म जागरूकता तुम्हारे अंतस में उत्पन्न होने लगेगी। अंततः तो दोनों मिलकर एक हो जाएंगे।

प्रेम और होश दो मार्ग हैं, और मंजिल दोनों की एक है- 'समाधि' अर्थात परमात्मा में डुबकी, ओंकार से मिलन, अहंकार का विसर्जन, अस्तित्व के साथ अद्वैत की प्रतीति।

दो मार्ग हैं, दो साधन हैं; साध्य एक ही है, वह सत्-चित्-आनंद जो समाधि में जाना जाता है, उसकी तरफ बढ़ना है। और जो धर्म उस तरफ जाए उसे ही वास्तविक धर्म

जानना। और धर्म बहुत नहीं होते जैसे विज्ञान एक है, वैसे ही धर्म भी एक है। ओशो ने एक बहुत प्यारा शब्द दिया है– धार्मिकता, रिलीजियसनेश। ओशो कहते हैं– 'मैं धार्मिकता सिखाता हूं धर्म नहीं' ये जो विशेषण वाले धर्म हैं– हिंदू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, पारसी, जैन, बौद्ध, इत्यादि.... ज्यादा अच्छा हो कि हम इनकी जगह एक नया शब्द इस्तेमाल करें 'धार्मिकता', यानि एक विशेषण रहित धर्म, बिना नाम का धर्म; वह जीवन को वर्तमान क्षण में जीने की शुद्ध कला होगी, न विगत का शोक, न भविष्य की चिंता। वह सत्यम्–शिवम्–सुन्दरम् को जीवन में उतारने का प्रवाहमान विज्ञान होगा।

जीवन प्रतिपल चलता है, जैसे झरना बहता है।
आगे की कोई आस नहीं, पीछे शोक न करता है।।

प्रतिक्षण मिलती नई जमीं, पर आकाश सनातन है।
बूंद समय में है बहती, धारा लेकिन शाश्वत है।
झरना झरकर कहता है, जीवन प्रतिपल चलता है।।

दुख के कैक्टस उगते हैं, विगत काल की क्यारी में।
सुख की कलियां खिलती हैं, आगत की फुलवारी में।।
आनंद सदा बरसता है, जीवन प्रतिपल चलता है।।

कुछ असार या सार नहीं, जीवन का श्रृंगार यही।
कुछ शाश्वत कुछ क्षणभंगुर, जीवन का आधार यही।।
अनहद बाजा बजता है, जीवन प्रतिपल चलता है।।

क्या पकड़ो क्या छोड़ागे, जड़ से चेतन पलता है।
शाश्वत की ही धूरी पर, समय का पहिया चलता है।।
भीतर दीपक जलता है, जीवन प्रतिपल चलता है।।

आगे की कोई आस नहीं, पीछे शोक न करता है। झरना झरकर कहता है, आनंद सदा बरसता है। अनहद बाजा बजता है, भीतर दीपक जलता है। उस भीतर के प्रकाश को जानना, अनाहत नाद को सुनना, परमानंद की वर्षा में स्नान करना धर्म है।

धन्यवाद।

# शांति पाने का शार्टकट

# 13
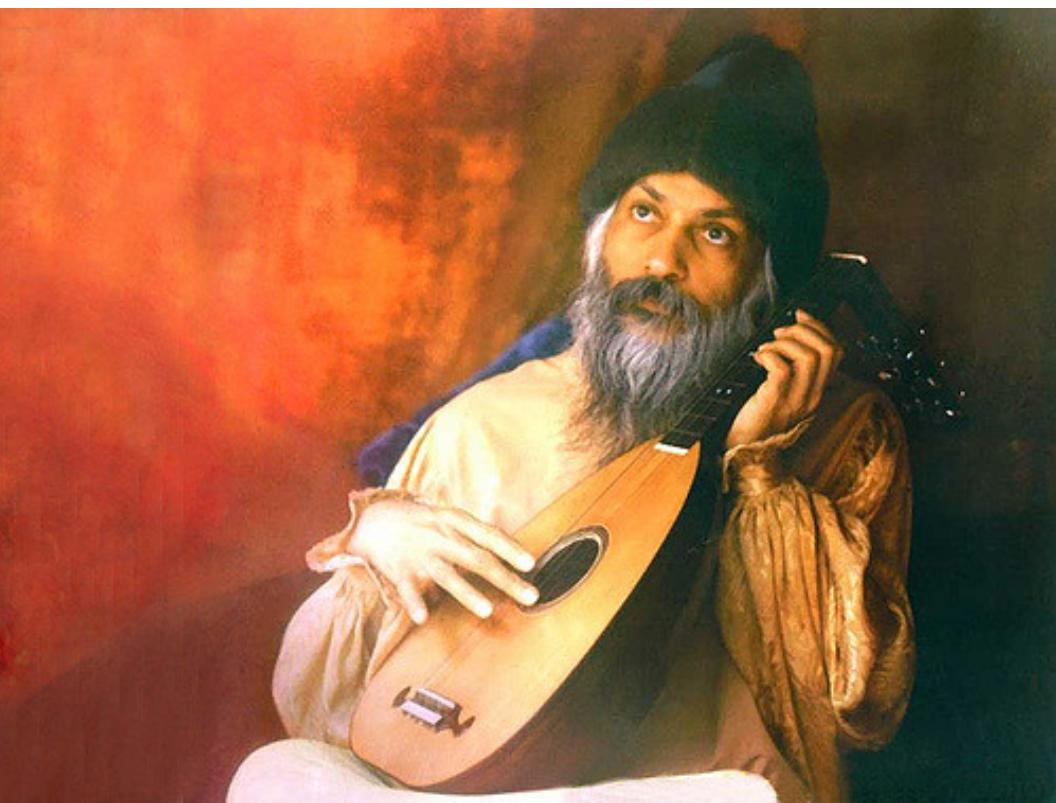
# सफल और सुफल में भेद
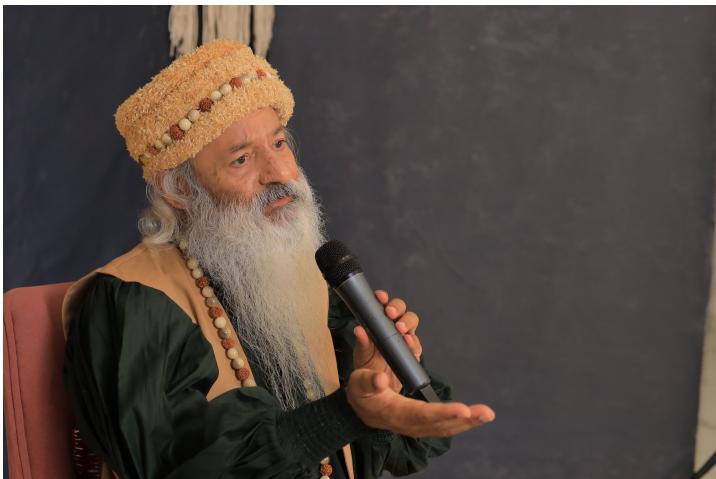
प्रश्न– आज एक कवि महोदय का सवाल आया है। इन्होंने लिखा है कि मेरा नाम महेन्द्र भारद्वाज है। मैं एक सभ्य, सुशिक्षित परिवार का तीस वर्षीय सफल व्यवसायी हूं। कम उम्र में ही पूर्वजों से चले आ रहे व्यापार को बढ़ाने और फैलाने में उम्मीद से ज्यादा कामयाबी हासिल कर ली है। किंतु मन में संतोष नहीं है। शांति किस चिड़िया का नाम है, मालूम नहीं। जीवन में प्रफुल्लता, प्रेम, विश्वास, और मैत्री–भाव का सख्त अभाव है। मेरी जीवन की व्यथा इस कविता में वर्णित है–

ऊब सुबह की, घुटन दोपहर, और उदासी शाम की।
कई दिनों से यही दशा है, क्या मर्जी है राम की।
सिर्फ औपचारिकता भर है, रस ही कहाँ रहा रिश्तों में।
एक उम्र जीने की खातिर, रह–रह कर मरना किस्तों में।
यह कितना तीखा मजाक, जिंदगी है बस नाम की।
कई दिनों से यही दशा है, क्या मर्जी है राम की।
तन के सुख की स्पर्धाओं में, मन जैसे बीमार पड़ा हो।
आमुख के पहले ही जैसे, लिखना उपसंहार पड़ा हो।

यह कैसे प्रारंभ की चर्चा, होती पूर्ण विराम की
कई दिनों से यही दशा है क्या मर्जी है राम की।
चिंता वह तेजाब कि जिसमें, यह अस्तित्व घुला जाता है।
पढ़ना हमें समर्पण लेकिन, अंतिम पृष्ठ खुला जाता है।
यह कैसा स्वागत है जिसमें, ध्वनि आखिरी प्रणाम की।
कई दिनों से यही दशा है, क्या मर्जी है राम की।

आचार्यजी, आपके समाधि शिविर नौ दिनों के होते हैं, इतना वक्त निकालना मेरे जैसे व्यस्त व्यवसायी के लिए मुमकिन नहीं है। क्या कोई शार्टकट संभव नहीं है? – महेन्द्र भारद्वाज

महेन्द्र भारद्वाज, नौ दिन में समाधि शिविर हो रहे हैं ओशोधारा में। इससे छोटा शार्टकट और क्या हो सकता है? अतीत में घोर त्याग, तपस्या और कठिनाईयों से गुजरकर, नब्बे साल में जो प्राप्त जो नहीं किया जा सकता था, नौ जन्मों में भी जिसकी उपलब्धि कठिन जान पड़ती थी; अब वह ओशो की कृपा से सब सुख-सुविधाओं में जीते हुए, नौ दिन में संभव हो पा रहा है। परमात्मा का ज्ञान घट रहा है, समाधि में डुबकी लग रही है; और कैसा शार्टकट चाहते हो?

तुम कहते हो शांति किस चिड़िया का नाम है मालूम नहीं! पूछते हो कि क्या कोई और शार्टकट संभव नहीं है? बस एक ही सरल सी बात संभव है कि अगर तुम अविवाहित हो, तो शांति देवी नाम की स्त्री से विवाह कर लो और अगर विवाहित हो, तो तुम्हारी जब बेटी हो उसका नाम शांति रख लेना। और कौन सा शार्टकट तुम्हें बताऊं!

श्रम तो करना होगा, साधना तो करनी होगी। तुमने सामान तो जुटा लिया, बाहर की समृद्धि तो जुटा ली, भीतर विपन्न के विपन्न हो। बाहर की सम्पन्नता, बाहर की संपदा भीतर की संपदा नहीं है। भीतर तुम विपदा ग्रस्त हो। तुम्हारा यह दुखियारा गीत तुम्हारी आंतरिक भावदशा बता रहा है।

भीतर भी एक संपदा है। मीरा कहती है–'पायो जी पायो मैंने राम रतन धन पायो।' उस राम रतन धन को पाना है कि नहीं? बाहर की सुविधाएं सुख पैदा कर सकती हैं, कष्ट दूर कर सकती हैं, लेकिन आनंद नहीं दे सकतीं। संतोष नहीं दे सकतीं। तुम कहते हो कि जीवन में प्रफुल्लता, प्रेम, विश्वास और मैत्रीभाव का सख्त अभाव है। यही तो जिंदगी की असली सपंदा है, जिससे तुम वंचित हो रहे हो। तुम कह जरूर रहे हो कि मैं एक शब्द सुशिक्षित परिवार का सफल व्यवसायी युवक हूं। नहीं... यह सफलता कोई सुफलता नहीं है। अच्छा है, बाहर से सुख-सुविधाएं जुटा लीं, मैं उसका विरोधी नहीं हूं। लेकिन यह पर्याप्त नहीं। जरूरी है, लेकिन पर्याप्त नहीं। आवश्यक है, लेकिन सिर्फ इसी से काम न चलेगा। आदमी को रोटी चाहिए, कपड़ा चाहिए, मकान चाहिए, स्वास्थ्य चाहिए, शिक्षा चाहिए, लेकिन इससे कोई संतोष घटित नहीं होगा। हाँ, आजीविका मिल जाएगी। तुम एक फैक्ट्री की जगह दो फैक्ट्री लगा लोगे। अपने पूर्वजों के व्यवसाय को और बढ़ा लोगे। लेकिन अगर तुम सोचते हो कि इससे प्रसन्नता मिल जाएगी, इससे जीवन में प्रेम घटित होगा, कि आनंद की सुवास उड़ेगी; तो तुम गलती में हो।

ऐसा न तुम्हारे पूर्वजों को हुआ, न हीं तुम्हें हो सकेगा। उसके लिए कुछ और करना होगा। अपने भीतर तलाशना होगा। तुम कह रहे हो– 'कई दिनों से यहीं दशा है। क्या मर्जी है राम की।'

तुम गलतफहमी में हो। बेचारे राम को बीच में न घसीटो। यह राम की मर्जी से नहीं, तुम्हारी खुदगर्जी के कारण है। यह तुम्हारा अहंकार का विस्तार और फैलाव है जो तुमने दुनिया में किया है। हो सकता है कि दुनिया की नजरों में तुम सफल हो जाओ, अपनी नजरों में सदा असफल ही रहोगे। यह सफलता सुफलता नहीं है। एक और सफलता है जो भीतर जानी जाती है।

जब कोई व्यक्ति ध्यान में समाधि में डूबता है तब असली राम की मर्जी का पता चलता है। पहले राम का तो पता लगा लो, याद रखना राम से मेरा अर्थ दशरथ के बेटे राम से नहीं। आयोध्या के राजा राम से नहीं। यह राम शब्द बड़ा प्राचीन है। राम के पहले एक और अवतार हो चुके हैं– परशुराम। यह नाम उनसे भी प्राचीन है। राम अर्थात भीतर उठ रहा गुंजार का स्वर। वह ईश्वर का स्वर है। इसलिए तो दशरथ ने अपने बेटे का नाम राम रखा होगा। यह नाम पहले से हीं प्रचलित रहा होगा। जब तक स्वयं के अंतस में स्थित उस राम को न जानो, राम की मर्जी को भी न पहचान सकोगे। नहीं, यह दुर्दशा एवं दुर्गति अहंकार की वजह से है, राम की मर्जी से नहीं। अभी कीर्तन में मा ओशो प्रिया का गाया गीत सुन रहे थे न–

'राम सुमिर, राम सुमिर, राम सुमिर बावरे।
नाम सुमिर, नाम सुमिर, नाम सुमिर बावरे।'

संतो ने सदा यहीं कहा है– उस राम–नाम का स्मरण करो जो तुम्हारे भीतर मौजूद है। तुम बहिर्मुखी हो, तुमने बाहर तो व्यवसाय फैला लिया है। अपना पसारा फैला लिया। इसको सिकोड़ोगे कब? मेरे गांव में एक व्यापारी थे, उनका नाम था पसारी जी। जब ओशो की उम्र छोटी थी, पसारी जी की दुकान के सामने से गुजरते हुए वे अक्सर उनसे पूछते थे कि 'पसारी जी, सिकोड़ोगे कब?'

पसारी जी सोचते थे कि यह लड़का बड़ी विचित्र बात पूछता है।

पसारने का मतलब है फैलाना। तुमने फैला तो लिया जाल इसको समेटना कब है। समेटना है कि नहीं..... उसका ख्याल हीं लोगों को नहीं आता। लोग मरते दम तक फैलाने के हीं पीछे पड़े रहते है, कि कुछ वृद्धि हो जाए, कि और विकास हो जाए। स्वयं समाप्त हो जाते हैं, अपनी जिंदगी खत्म कर देते हैं, और फैलाना बंद नहीं करते। भारद्वाज जी, मैं आपसे कहना चाहूंगा–

'जाल समेटा करने में भी, समय लगा करता है मांझी;
मोह मछलियों का अब छोड़।।
सिमिट गई किरणें सूरज की, सिमटीं पखुंडियां पंकज की;
दिवस चला छिति से मुंह मोड़। मोह मछलियों का अब छोड़।।
तिमिर उतरता है अम्बर से, एक पुकार उठी है घर से;
खींच रहा अब कोई बे–डोर। मोह मछलियों का अब छोड़।।

जो दुनियां जगती, वह सोती, उस दिन की संध्या भी होती;
जिस दिन का होता है भोर। मोह मछलियों का अब छोड़।।
नींद अचानक भी आती है, सुध–बुध सब हर ले जाती है;
गठरी में लगता है चोर। मोह मछलियों का अब छोड़।।
अभी छितिज पर कुछ–कुछ लाली, जब तक रात न घिरती काली;
उठ.... अपना सामान बटोर। मोह मछलियों का अब छोड़।।
जाल समेटा करने में भी, वक्त लगा करता है मांझी।
मोह मछलियों का अब छोड़।'

कितने जाल फैलाए तुमने, कुछ हाथ लगा? तुम खुद ही कह रहे हो कि कोई प्रफुल्लता नहीं, कोई शांति नहीं, कोई संतोष नहीं; तो अब चेतो, जागो। साफ है कि किसी दूसरे आयाम में, किसी दूसरी दिशा में यात्रा करनी होगी। उसमें भी समय लगेगा। तुम कह रहे हो कि नौ दिन के समाधि शिविर में शामिल होने का वक्त नहीं है। तीस साल तुमने व्यर्थ के कार्य में गुजार दिए और हो सकता है आगे साठ साल और इसी विस्तार में, इसी फैलाव में लगा दो, तथा अंततः मृत्यु के क्षण में पाओ कि तुम्हारे जाल में कोई मछली फंसी नहीं! कुछ हाथ आया नहीं! बड़े–बड़े सिकंदर और हिटलर खाली हाथ जाते हैं– भिखारियों की तरह रोते–गिड़गिड़ाते।

धन्यभागी हैं वे लोग जो जीते जी जाग जाते हैं, और पहचान लेते हैं कि उनके हाथ खाली हैं। भारद्वाज तुम्हें ख्याल आना शुरू हुआ है, बुद्धिमान युवक लगते हो। अन्यथा युवा अवस्था में तो वासनाएं बड़ी प्रचंड होती हैं। कामनाओं का अंत ही नहीं आता। अधिकतर तो लोग बूढ़े हो जाते हैं तब भी उनकी कामनाएं बूढ़ी नहीं होतीं। कामनाएं ज्यों की त्यों, जवान की जवान ही बनी रहती हैं। तुम्हारे भीतर प्रज्ञा का उदय हुआ है। अब थोड़ा जागो, चेतो, नौ दिन का समय बहुत छोटा–सा है। जिस विराट को पाने चले, उसमें नौ जन्म भी लग जाएं तो कम हैं। यह तो परम सदगुरु ओशो की कृपा कि उन्होंने अध्यात्म का ऐसा विज्ञान दिया, ऐसी अद्भुत टेकनीक बतायीं, ऐसी सरल और तीव्रगामी ध्यान की विधियां इजाद कीं; कि जो काम नौ जन्मों में मुश्किल से हो पाता था, वह नौ दिन में होने लगा है।

महेन्द्र, समय निकालो, और अंत में तुम पाओगे यही नौ दिन काम में आए। नब्बे साल संसार में जो तुमने गंवाए वे सब व्यर्थ ही गए। एक बार राम को जानो, अपने भीतर बैठे परमात्मा को पहचानो। 'राम सुमिर मन बावरे' यह मन तो पागल है बावरा है। यह तुम्हें भटकाता ही रहेगा। सदा बहिर्मुखी करता रहेगा, अब भीतर मुड़ो।

जाल समेटा करने में भी, वक्त लगा करता है मांझी।
मोह मछलियों का अब छोड़।।

धन्यवाद।

# 14

# भावातीत ध्यान या भावाविष्ट समाधि

**प्रश्न– आज का सवाल, श्री देव प्रसाद ने पूछा है, कि महर्षि महेश योगी का भावातीत ध्यान मैं कई सालों से कर रहा हूं। मैंने सुना है कि समाधि एक प्रकार की भावाविष्ट अवस्था होती है, जो यहाँ ओशोधारा में सिखाई जाती है। ध्यान का लक्ष्य भावातीत होना है, या भाव समाधि में डूबना? कृपया स्पष्ट करें। – देवप्रसाद**

ओशो शैलेन्द्र– देव प्रसाद भावना के दो आयाम हो सकते हैं, एक बहिर्मुखी भावना, और एक अंतर्मुखी भावना। भावना ठीक मध्य में है। ऐसा समझो कि हमारे पांच तल हैं, सबसे बाहर शरीर, उसके भीतर मन, उसके भीतर हृदय, उसके भीतर आत्मा, और उसके भी भीतर परमात्मा। शरीर कर्मों का तल है। मन विचारों का तल है। हृदय भावना का तल है। आत्मा चैतन्यता का तल है, और परमात्मा ब्रह्म का, भगवत्ता का तल है। भावना ठीक बीच में है। आत्मा और परमात्मा उसके भीतर हैं, मन और शरीर उसके बाहर हैं। यदि भावना संसार की तरफ उन्मुख हुई तो वह दुख और संताप का कारण बनेगी, लेकिन यदि यही भावना भीतर की तरफ मुड़ी– स्वयं की ओर, परमात्मा की ओर, तब यही भावना भक्ति बन जाएगी, और महाआनंद का कारण बनेगी।

जब महेश योगी कहते है, भावातीत होना है, भावनाओं के पार जाना है, तो वे

बर्हिर्मुखी भावनाओं की बात कर रहे हैं। और जब मैं कह रहा हूं भाव समाधि में डूबना है, तो मैं अतंर्मुखी भावना की बात कह रहा हूं। दोनों के परिणाम बिल्कुल भिन्न–भिन्न हैं। इसलिए इसमें कन्फ्यूजन पालने की कोई जरूरत नहीं। दोनों का संदर्भ अलग है। वह भावना जो तुम्हें मन की तरफ, बाहर की ओर ले जाती है, वह अतंतः दुख और संताप में परिणत होगी। तुम एक दिन कहोगे–

'कुल मिलाकर यही जिंदगी में हुआ,
धूल ही धूल या फिर धुआं ही धुआं।
दर्द करते रहे हम जमा ही जमा, किंतु नामे न डाले कभी भूलकर।
आज बैठे किया उम्र भर का गणित, लाख जोड़ा–घटाया, नतीजा सिफर
हाथ खाली हुए और आसन छिना, छोड़ उठना पड़ा जिंदगी का जुआं,
धूल ही धूल या फिर धुआं ही धुआं।
एक अंधे सफर पर निकलना पड़ा, जब शुरू हो गया सांस का सिलसिला।
अनवरत चल रहे हैं चरण राह पर, कम न होता मगर बीच का फासला।
लौटना भी असंभव कहाँ जाइए, इस तरफ खाइयां, उस तरफ है कुआं।
धूल ही धूल या फिर धुआं ही धुआं।
प्यार ने जब हमारे ह्रदय को कभी, घाव पाया हरा जिस जगह भी छुआ।
आज तक एक मोती नहीं ढल सका, जब चुआं आंख से गर्म आंसू चुआं।
श्राप ही श्राप देती रही है खुशी, दर्द भी दे न पाया हमें तो दुआ।
कुल मिलाकर यही जिंदगी में हुआ,
धूल ही धूल या फिर धुआं ही धुआं।'

यदि भावना बर्हिर्मुखी हुई संसार की तरफ गई तो अंत में तुम पाओगे बस– 'कुल मिलाकर यही जिंदगी में हुआ, धूल ही धूल या फिर धुआं ही धुआं।'

लेकिन इसमें भावना का दोष नहीं है। काश इसी भावना को तुम स्वयं की तरफ मोड़ते तब एक अद्भुत घटना घटती, तब कुछ और ही होता। यही भावना भक्ति स्वरूप हो जाती। यहीं भावना काम में आती। तब एक दूसरा ही लोक शुरू होता। आनंद का लोक, प्रेम का लोक, खुशी का लोक, तब यही तुम्हारा ह्रदय भक्त का ह्रदय हो जाता। याद रखना जो प्रीति, जो प्रेम, जो भाव, जगत से हमें जोड़ता है, वही प्रीति और भाव परमात्मा से भी जोड़ता है। जोड़ना उसका गुण है। प्रेम का गुण है जोड़ना। लेकिन तुम किससे जोड़ोगे यह तुम पर निर्भर करता है। संसार से जुड़े तो दुर्भाग्य, परमात्मा से जुड़े तो सौभाग्य। भक्त भी रोता है। भक्त के भी आंसू बहते हैं। मीरा कहती है– 'असुंवन जल सींच–सींच प्रेम बेली बोई, अब तो बेल फैल गई, आनंद फल होई।'

भक्त को परम आनंद का फल मिलता है। प्रेम की भावना गलत नहीं है। मगर प्रेम

तुमने ठीक से किया नहीं। उसमें अहुत अशुद्धियां मिश्रित हैं। अशुद्ध सोने में से कचरे को दग्ध करो, कुंदन को निखारो। तो महेश योगी जब कहते हैं भावातीत होना है, तो वे अशुद्धियों को जलाने की बात कह रहे हैं, बहिर्मुखी भाव की बात कर रहे हैं। और जब मैं कहता हूं भाव समाधि में डूबना, तो परमात्मा से जुड़ने की, स्वर्ण को परिष्कृत करने की बात कर रहा हूं। इसी के साथ एक दूसरी अदभुत घटना घटना घटती है– यही भाव यही प्रेम तुम्हारे अहंकार को जलाकर ओंकार कर देता है।

'अश्रु से आंख तो धो लो, गीत प्रारंभ करता हूं।

गीत संस्कार दे कवि के, अहम् को ओम् करता है।
गला कर वक्ष पत्थर का, गीत ही मोम करता है।
दर्द के साथ में हो लो, गीत प्रारंभ करता हूं।

दीया है आरती का वह, छंद की गंध कर्पूरी।
अश्रु की पांडुलिपी में है, वेदना की कथा पूरी।
भीतर द्वार तो खोलो, गीत प्रारंभ करता हूं।

गीत सौंदर्य है शाश्वत, सत्य की आत्मा है वह।
वही शिव–तत्त्व रचना का, सृजन–परमात्मा है वह।
बुद्धि को भाव में घोलो, गीत प्रारंभ करता हूं।

सहजतम सूत्र दर्शन का, प्यार के श्लोक जैसा है।
देवता का प्रभा मंडल, प्रखर आलोक जैसा है।
शब्द को अर्थ से तौलो, गीत प्रारंभ करता हूं।'

निशब्द में निनादित शब्द का अर्थ पकड़ो, यह मौन का संगीत जो हमारे भीतर गूंज रहा है– ओंकार स्वरूप– यही भागवत गीत है। हम कृष्ण को वचनों को कहते हैं 'भागवत गीता,' क्योंकि कृष्ण के भीतर भी वही ओंकार गूंज रहा है। वे भगवत्ता के साथ एक हो गए, इसलिए उनके भीतर से जो प्रगट हुआ, वह भागवत गीता कहलाता है। तुम्हारे भीतर भी भागवत गीता गूंज रही है। भाव को भीतर की तरफ मोड़ो। प्रेम भक्ति बन जाएगा।

इसी में भक्ति तुलसी की, इसी में नैन सूरा के,
कबीरा का यही करघा, यही खड़ताल मीरा के;
प्राण के बोल ही बोलो, गीत प्रारंभ करता हूं।

दर्द के साथ में हो लो, गीत प्रारंभ करता हूं।
भीतर द्वार तो खोलो, गीत प्रारंभ करता हूं।
बुद्धि को भाव में घोलो, गीत प्रारंभ करता हूं।

शब्द का अर्थ से तौलो, गीत प्रारंभ करता हूं।
प्राण के बोल ही बोलो, गीत प्रारंभ करता हूं।
अश्रु से आंख तो धो लो, गीत प्रारंभ करता हूं।'

आंसू-आंसू भी अलग प्रकार के होते हैं। एक दुखः के आंसू हैं, जिन्हें हम भावुक या सेंटीमंटल लोग कहते हैं, वे भी रोते हैं; लेकिन उनका रोना दुख का रोना है। एक आनंद के आंसू भी होते हैं- जब भाव भीतर मुड़ता हैं। कबीर साहब ने कहा है, प्रेम गली अति सांकरी ता में दो न समाय। यही भाव की धारा, यही प्रेम की धारा जब भीतर मुड़ती है, तो राधा बनकर अंततः श्याम के साथ एकात्म हो जाती है।

मैंने आपसे कहा प्रेम जोड़ने वाला तत्व है। तुम किस से जुड़ोगे उस पर सब कुछ निर्भर है। तो भाव के पार जाना है, लेकिन स्मरण रखना किस प्रकार के भाव के- वह, जो तुम्हें बाहर की तरफ ले जाता है। उसका अतिक्रमण करना है। लेकिन जो भाव तुम्हें भीतर ले जाता है- उसमें तो और गहरे..... और गहरे डूबते जाना है। ऐसे डूबना है कि एक दिन तुम विलीन हो जाओ। गीत संस्कार दे कवि के, अहम् को ओम् करता है। गला कर वक्ष पत्थर का, गीत ही मोम करता है।

बस पिघल जाना। बिना भाव के पिघलना न हो सकेगा। रामकृष्ण परमहंस एक कहानी सुनाते थे कि एक नमक का पुतला सागर की गहराई नापने के लिए गया। कूदा सागर में... जैसे-जैसे भीतर डूबता गया, धीरे-धीरे पिघलता गया, घुलता गया। अतंतः एक क्षण ऐसा आया कि नमक का पुतला बचा ही नहीं। केवल सागर ही शेष रहा। ठीक ऐसे ही एक दिन भक्त भी खा जाता है। केवल भगवान ही शेष बचता है। तुमने सुनी होगी कहानी वृदांवन के मंदिर में मीराबाई कृष्ण की मूर्ति में समा गईं। ऐसा तथ्यगत रूप से हुआ कि नहीं, यह बात मेरे लिए महत्वपूर्ण नहीं है। लेकिन यह सुंदर काव्य प्रतीक निश्चित ही बहुत महत्वपूर्ण है। भक्त एक दिन भगवान में समा जाता है, और भगवान ही हो जाता है। जैसे कोई नदी सागर में गिरकर सागर ही हो जाती है, ठीक वैसे ही ध्यान-समाधि की सरिता परमात्मा के संग एकाकार हो जाती है।

समाधि की है गंगा, नाम इसका ओशोधारा है;
सदा आनंद में जो झूमते ये उनकी धारा है।

अनाहत नाद की टोपी पहन हम मस्त रहते हैं;
रचा आंखो में अंजन ज्योति का हम रक्स करते हैं।
खुमारी नाम की ऐसी कि बदला हर नजारा है।

बसी रहती है चंदन की सुगंधि स्वास में, तन में;
मेरी जिह्वा है लेती राम रस का स्वाद हर क्षण में।
कोई ऊर्जा हमारे प्राण को देती सहारा है।

घटे प्रतिकूल अमृत चेतना कंपित नहीं होती;
कोई आनंद लहरी हर घड़ी उत्सव नया भरती।
लगा मुझको गले प्रभु प्रेम देता ढेर सारा है।

हरि में और हममें तत्वतः कुछ भेद ना बाकी;
बचा बस एक केवल रिंद या उसको कहो साकी।
न जाना है, न आना है, हुआ निर्वाण प्यारा है।

हरि में और हममें तत्वतः कुछ भेद ना बाकी; बचा बस एक.... एक ओंकार सतनाम! भक्त भगवान गया। नदी सागर सागर हो गई, ध्यान अपने ध्येय के संग एकाकार गया। यही प्रेमभाव का चमत्कार है। अंत में फिर से दोहरा दूं कि प्रेम की भावना गलत नहीं है। मगर उसमें अशुद्धियां मिश्रित हैं। कुंदन को निखारो। जब कहते हैं भावातीत होना है, तो अशुद्धियों को जलाने की बात है, और जब कहते हैं भाव समाधि में डूबना है, तो परमात्मा से जुड़ने की बात है। प्रेमभाव की साधना तुम्हारे अहंकार को जलाकर ओंकार कर देती है।

धन्यवाद।

15

# सबद ही ताला, सबद ही कुंजी

**प्रश्न– एक मित्र ने पूछा है, कि मैंने ओशो साहित्य का खूब अध्ययन किया है, किन्तु उनकी 650 किताबों में मैं यह नहीं समझ पाता कि परम सद्‌गुरु ओशो का मुख्य संदेश क्या है?**
**– स्वामी सुरेश भारती**

ओशो शैलेन्द्र– सुरेश भारती, मुख्य संदेश तो सभी संतों का एक है। सभी अवतारों का, पैगम्बरों का, तीर्थंकरों का; समस्त बुद्धों का, ऋषियों का, मुनियों का.... वह परम संदेश तो एक ही है। हाँ! परिधिगत बातें अलग-अलग होंगी। निश्चित रूप से उपनिषद के काल में, परिस्थितियां भिन्न थीं। उपनिषदों के ऋषियों ने जो कहा होगा उस समय की समस्याओं के बारे में, वह तात्कालिक सत्य था। लेकिन जो परमसत्य कहा, वह तो वही रहा, जो बुद्ध के समय था, जो कबीर के समय था, जो नानक के समय था।

शाश्वत सत्य सदा एक है। परिधि की तात्कालिक बातें बदल जाती हैं। तुम 650 किताबें ओशो की पढ़ोगे तो संभव है कि तुम भ्रम की स्थिति में पड़ जाओ कि ओशो का मुख्य संदेश क्या है? मैं तुम्हें याद दिलाना चाहूंगा– मुख्य संदेश उसी शाश्वत सत्य को जानने के लिए चुनौती और आमंत्रण है कि परमात्मा से कम पर राजी मत होना। जब तक वह सच्चिदानंद ही न मिल जाए तब तक जीवन में रुकना मत। चरैवेति-चरैवेति... चलते चलो, चलते चलो। वही तो पुकार है सारे संतों की। ओशो यानि चेतना के परम शिखर, जैसे हिमालय में एवरेस्ट! वे अपनी चरम उंफचाइयों से पुकारते हैं और मनुष्य जाति जीती है अंधेरी घाटियों में। वे पुकारते हैं

कि आओ ऊपर, ऊर्ध्वगमन करो।

ओशो यानि चैतन्य के महासागर.... वे पुकार रहे सरिताओं को, आओ और सागर में विलीन हो जाओ। छोड़ो अपनी सीमाएं, तोड़ो अपने तट, असीम और विराट के साथ जुड़ जाओ। अरूप भगवत्ता के साथ एक हो जाओ।

कई मित्र मुझसे पूछते हैं कि ओशो स्वयं को भगवान क्यों कहलाते थे? इसीलिए कि तुम्हारे भीतर भी भगवान मौजूद है, तुम भी भगवान हो सकते हो, यह स्मरण दिलाने के लिए। वह बीज लेकर तुम आए हो। उस बीज को अंकुरित होने देना। सिर्फ मनुष्य रहकर ही विदा मत हो जाना। कुछ विराट तुमसे होने को है, उसे घटने देना। मनुष्य केवल एक बीज है। और जब तक वह पुष्पित, पल्लवित न हो जाए तब तक कोई संतोष और आनंद घटित नहीं हो सकता। तो ध्यान के बीज बोओ, समाधि का अंकुर आने दो, संबोधि के फूल खिलने दो, और आनंद और प्रेम की सुगंध उड़ने दो, तब जाकर जीवन में पूर्णता आती है। महाआनंद घटित होता है। बुद्धत्व को पाए बगैर विदा मत होना, वह तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है।

एक बार स्वयं ओशो से किसी ने यह सवाल पूछा था, जब वे संत गोरखनाथ पर प्रवचन दे रहे थे। आपने एक शब्द सुना होगा– गोरखधंधा, गोरखनाथ ने ध्यान की इतनी विधियां ईजाद कीं, जीवन के विभिन्न पहलुओं के बारे में इतनी बातें कहीं कि लोग कन्फ्यूज्ड हो गए होंगे। जैसे आपने पूछा है कि 650 किताबों में मुख्य शिक्षा कौन सी है? गोरखनाथ के शिष्य भी गोरखधंधे में उलझ गए। यह गोरखधंधा शब्द गोरखनाथ से आया। तो स्वभावतः यह प्रश्न उठना नैसर्गिक ही था, कि गोरखनाथ की मूल शिक्षा क्या है? ओशो उसके जबाव में क्या कहते हैं, सुनो–

'बड़ी छोटी और संक्षिप्त....

हंसिबा खेलिबा, रहिबा रंग, काम क्रोध न करिबा संग।

हंसिबा, खेलबा, गायिबा गीत, दृढ़ कर राखी अपना चीत।।

यही मेरी शिक्षा भी है। हंसिबा, खेलिबा, रहिबा रंग। रंग में रहो, मस्ती में, मौज में, आंनद में। इतना परमात्मा ने दिया है, नाचो, गुनगुनाओ, गाओ। गाओ गीत और गीत में अपने चित्त को दृढ़ हो जाने दो। जम जाने दो, लग जाने दो बैठक और सब कुछ अपने आप हो जाएगा। शेष सब अपने से हो जाएगा। शेष परमात्मा कर लेगा, तुम बस इतना करो–

'सबद ही ताला, सबद ही कुंजी, सबद ही सबद जगाया।

सबद ही सबद सुपर्चा हुआ, सबद ही सबद समाया।।'

उसी महासंगीत से सब पैदा होता है। परमात्मा परम ध्वनि है– ओंकार। 'एक ओंकार सतनाम'। ओम का नाद है परमात्मा। 'सबद ही ताला, सबद ही कुंजी'... इसलिए उस परम शब्द में ही ताला है, उसी परम शब्द की कुंजी भी है। संगीत का ही ताला है, संगीत की ही कुंजी है। छंद का ही ताला है, छंद की ही कुंजी है। तुम्हारे भीतर मौन संगीत उठ आए, मौन गीत जग जाए, शब्द–शून्य, शब्द–रिक्त, शुद्ध संगीत जग जाए, बस कुंजी मिल गई।

'सबद ही सबद जगाया'... और यही तो गुरु के पास घटता है। गुरु अपनी वीणा छेड़ देता है, अपना शब्द छेड़ देता है। तुम्हारे भीतर सोए हुए शब्द में झंकार पड़ती है। तुम्होर भीतर भी शब्द से प्रतिध्वनि उठने लगती है। 'सबद ही सबद जगाया, सबद ही सबद सुपर्चा हुआ'... और गुरु के संगीत में डूबकर, गुरु की मूलध्वनि में डूबकर अपना भी परिचय हुआ। 'सबद ही सबद ही

सुपर्चा हुआ। सबद ही सबद समाया।'... और फिर जीवन का सारा संगीत उस महासंगीत में लीन हो जाता है।'

सुनते हो ओशो ने क्या कहा– जो गोरखनाथ की मूल शिक्षा है कहते हैं, वही मेरी भी मूल शिक्षा है। समस्त संतों की, बुद्धों की, जिनों की एक ही मूल शिक्षा है, उस 'सबद' यानि 'ओंकार' रूपी महासंगीत में लीन हो जाओ।

वही शाश्वत सत्य है, उसके अलावा और कोई शिक्षा हो भी कैसी सकती है। परिधिगत बातें भिन्न होंगी, समय बदल जाता है, देश और काल के अनुसार अलग–अलग समस्यायें होती हैं। निश्चित रूप से बुद्धपुरुष उनका भी समाधान देते हैं। लेकिन वे तातकालिक सत्य हैं। ये कोई शाश्वत सत्य नहीं है। शाश्वत सत्य तो एक ही है, उस ओंकार स्वरूप, आनंद स्वरूप परमात्मा को जानो। दो हैं इसके मार्ग– पहला है ध्यान मार्ग, दूसरा है भक्ति मार्ग। एक है होश का मार्ग, दूजा है प्रेम का मार्ग; लेकिन दोनों का लक्ष्य एक है समाधि। समाधि यानि परमात्मा में डुबकी, ओंकार में तल्लीनता।

स्वामी सुरेश, तुमने कभी ख्याल किया, तुम्हारे नाम का अर्थ क्या है? ओशो ने तुम्हें बड़ा प्यारा नाम दिया है। सुर का अर्थ एक तो होता है देवता; और दूसरा अर्थ होता है स्वर, ध्वनि, संगीत। वह जो भीतर छंदबद्धता, लयबद्धता पैदा होती है; वही सुरीला होना, दिव्य होना है। इसलिए राक्षसों को हम कहते हैं– 'असुर'। असुर यानि सुरहीन, बेसुरे, बेताल। जिनके भीतर छंदबंद्धता नहीं है, एक–लय नहीं है, ताल और तारतम्यता नहीं है।

सुरेश भारती, सुरेश बनो। भीतर के उस सुर की साधना करनी है, और तब तुम पाओगे परम आनंद फलित होने लगा। वह जो बीज तुम लेकर आये थे, धीरे–धीरे वह फूल की तरफ यात्रा करने लगा। इस फूल से फिर बहुत सुवास उड़ेगी, करुणा उस सुगंध का नाम है।

बंगाल के संत चंडीदास ने कहा है– 'उत्सव आमार जाति आनंद आमार गोत्र' भीतर आनंद फलित होगा, बाहर उत्सव घटित होगा। उत्सव आनंद की प्रतिछबि है। आनंद तुम्हारा व्यक्तिगत अनुभव है भीतर का। और उत्सव बाहर उसकी छाया है। जब तक ऐसा न हो जाए तब तक समझना कि अभी तुमने ओशो की पुकार सुनी नहीं। वे बुला रहे हैं आओ, आनंद–उत्सव में डूबो। और मार्ग बड़ा सरल है। ध्यान पूर्वक, प्रेम पूर्वक, चले चलना, चले चलना। गौतम बुद्ध अपने शिष्यों को कहते थे, चरैवेति, चरैवेति, चलते चलो, चलते चलो। जब तक मंजिल न मिल जाए। और वह अंतिम लक्ष्य क्या है? वही ओशो का मूल संदेश है। वही गोरखनाथ का मूल संदेश था। वही नानक का, कबीर का, मीरा का, बुद्ध का, महावीर का सबका मूल संदेश एक ही रहा है, और आने वाले सदियों में भी समस्त बुद्धों का संदेश वही होगा। अभी मा ओशो प्रिया का गीत आप सुन रहे थे न.....

ओशो ने हिमालय से पुकारा,<br>
है कोई लेवन हारा...!<br>
कितने जन्म गंवाए हमने, मिटा न मन का अंधेरा,<br>
जब–जब मुक्ति चाही तब–तब, बढ़ता गया नया घेरा,<br>
हाए फिर भी आया न उजाला,<br>
है कोई लेवन हारा...!

कितनी राहें बदलीं हमने, कितने भटके–भूले,
रूप संवारे, संवर न पाया, दर्पण झूठ न बोले,
सच्चा न रुप निखारा,
है कोई लेवन हारा...!
कितने महल बनाये हमने, खंडहर हो गए सपने,
चमन कितने हमने लगाए, बिखर गए सब अपने,
तज गोरखधंधा ये सारा,
है कोई लेवन हारा...!
बदली साकी, बदली हाला, चूके रागी–बैरागी,
ऐसी मदिरा ओशो ने ढाली, सिद्धार्थ को तारी लागी,
जागा भाग हमारा .........
है कोई लेवन हारा...!
ओशो ने हिमालय से पुकारा,
है कोई लेवन हारा...!

'ओशो ने हिमालय से पुकारा, है कोई लेवन हारा। निश्चित ही लेने के लिए एक पात्रता चाहिए। वह पात्रता क्या है, उसी का नाम है शिष्यत्व। तुम भावपूर्वक डूबना सीखो। गुरु के प्रति एक श्रद्धा, एक भरोसा, वे जहाँ से पुकार रहे हैं यद्यपि उसके बारे में हम जानते नहीं, अज्ञात की पुकार है, अज्ञेय के लिए निमत्रंण है; लेकिन जो साहसी हैं और चुनौती को स्वीकारेंगे, एक दिन निश्चित रूप से वे जीवन के परम लक्ष्य को पा सकेंगें।

'सबद ही ताला, सबद की कुंजी' उस ओंकार में ताला है, उस ओंकार में ही कुंजी छुपी है। यहाँ ओशोधारा में हम लोग मुख्य रूप से ओशो की मूल देशना पर ही कार्य कर रहे हैं। यूं तो 650 किताबों में, ओशो हजारों–हजारों मौलिक विचार दिए, जीवन के विविध पहलुओं पर अपनी अद्भुत क्रांतिकारी दृष्टि दी, लेकिन अगर चुनना हो, तो हमने से इसमें एक ही काम चुना है, वह है ओशो की मूल देशना– 'ओंकार की साधना।'

यहाँ ध्यान समाधि शिविर में, सुरति समाधि शिविर में उसी की साधना होती है। क्योंकि शेष सब तो अपने आप हो जाएगा। ओशो ने एक जगह कहा है 'एक साधे सब सधै, सब साधे सब जाए।' यदि तुमने बहुत कुछ साधने की कोशिश की तो कुछ भी नहीं सध पाएगा। तुम उस एक ओंकार को, उस महासंगीत को साध लो। और शेष सब अपने आप सध जाएगा। तुम मूल की चिंता कर लो, जड़ को खाद–पानी दो, फल–फूल की फिक्र अपने आप हो जाएगी। और यदि तुमने फल–फूल–पत्तियों और शाखाओं की चिंता की, तथा जड़ को पानी सींचना, खाद देना भूल गए, तो वृक्ष कुम्हला जाएगा।

...इसलिए समस्त संतों की मूल देशना को सदा याद रखना। कहीं गौण बातों में मुख्य बात खो न जाए! तात्कालिक बातों के नीचे शाश्वत सत्य दब न जाए! क्रांतिकारी विचारों की भीड़ में सनातन का स्वर सुनाई पड़ना बंद न हो जाए! ऐसा पहले भी बारम्बार हुआ है। कम से कम इस बार तो न हो!

धन्यवाद।

## 16

# जो सहज है, वही सही है

**प्रश्न– एक मित्र ने पूछा है कि परमात्मा की प्राप्ति के लिए ध्यान–योग की साधना ज्यादा उपयोगी है, अथवा भक्ति–भाव में डूबना?**

ओशो शैलेन्द्र– पूछा है – श्री मनोहर त्रिपाठी ।

ये दो मार्ग मुख्य हैं, क्योंकि दो प्रकार के मनुष्य हैं– कुछ मस्तिष्क केंद्रित, विचार केंद्रित, बुद्धि केंद्रित; उनके लिए ध्यान की साधना ज्यादा आसान होती है। और कुछ हैं– हृदय केंद्रित, भाव केंद्रित; उनके लिए भक्ति की साधना ज्यादा आसान होगी। मनोहर, जो बात तुम्हारे मन को हर ले, तुम उसी राह पर चल पड़ो। ये बातें कोई ऐसी नहीं हैं, जो हम स्वयं परिवर्तित कर सकें, हमें प्रयोग कर–कर के देखने होंगे। कर–कर के ही पता चलेगा, कि क्या सुगम हैं क्या कठिन है?

ओशो की एक किताब का शीर्षक है– 'टेक इज इजी' उसमें एक बड़ी महत्वपूर्ण बात वे कहते हैं– 'दि इजी इज राईट' जो सरल है, जो सुगम है, वही सत्य है। दूसरे से तुलना न करना, कम्पेरीजन का कोई उपाय नहीं। तुम अपने भीतर टटोलना, तुम्हें क्या अच्छा लगता है। तुम्हारे हृदय का भाव क्या है? अभी ओशो कीर्तन संध्या में गीत बज रहा था– गोविन्द

बोलो, गोपाल बोलो– अगर तुम्हें यह भाव–भरा कीर्तन आंदोलित करता है, हृदय में कुछ स्पंदन करता है तो किस्मत वाले हो! यदि भक्ति में डूब सको तो सौभाग्यशाली हो, न डूब सको तो ध्यान के प्रयोग आजमाना, योग साधना में जाना। कोई न कोई रास्ता मिल ही जाएगा। और ये रास्ता ऐसा नहीं है, कि पहले से बना बनाया हो। चल चलकर ही बनता है।

सदा से जाना गया है कि इन दो मार्गों से परम यात्रा संभव है। मीराबाई के रास्ता समर्पण का मार्ग है और महावीर का रास्ता संकल्प का मार्ग है। इसलिए तो वे महावीर कहलाए, बड़ी वीरता का काम उन्होंने किया। उनके बचपन का नाम महावीर नहीं था, माता–पिता ने तो नाम रखा था– वर्धमान। महावीर नाम उन्हें बाद में दिया गया। क्योंकि महा–संकल्पवान व्यक्ति थे। बड़े योद्धा, बड़े जुझारू, महा–क्षत्रिय थे। वह जो क्षत्रिय की क्षमता थी जूझने की, संघर्ष की, संकल्प की; वह सारी की सारी अंतर्मुखी हो गयी। स्वयं के ऊपर विजय हासिल की। इसलिए उन्हें जिन कहा गया। और इसलिए उनके पीछे जो धर्म चला उसका नाम जैन धर्म पड़ा। जिन यानी जो जीत गया। बाहर किसी पर आक्रमण नहीं किया स्वयं से ही संघर्ष किया। अपने अहंकार को जीता, अपने मन को जीता, अपने हृदय को जीता, अपनी आत्मा को जीता, इसलिए वे जिन कहलाए।

प्रभु तक पहुंचने का दूसरा मार्ग है समर्पण का, नारद का, शांडिल्य का, मीरा का, कबीर का, गुरु नानक का। इन्होंने कोई योग साधना नहीं की, कोई जप, तप, संयम नहीं साधा। ये तो बस अपने भाव में डूबे। प्रेम की जो धारा थी हृदय की, उसे परमात्मा की ओर उन्मुख कर दिया, और उसी के द्वारा उन्होंने मंजिल को पाया। गीत गाते हुए, नाचते हुए, झूमते हुए परमात्मा को पा लिया। चल सको समर्पण के मार्ग पर तो सर्वाधिक सुंदर, लेकिन अगर न चल सको.... कोई हर्ज नहीं! सकंल्प के मार्ग पर चलो।

याद रखना प्रत्येक मनुष्य माता–पिता दोनों के संयोग से बना है। उसमें स्त्रैण गुण भी हैं, और पुरुष गुण भी हैं। संकल्प की भी शक्ति है, और समर्पण की भी क्षमता है। कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो केवल बुद्धि केंद्रित हो, अथवा केवल हृदय केंद्रित ही हो। प्रकृति ने ये दोनों क्षमताएं हमें दी हैं– विचार की और भाव की। मस्तिष्क और हृदय, दिल और दिमाग इन दोनों का उपयोग करो। सामान्यतः जिस ढंग से हम जी रहे हैं, हमारा हृदय दुर्भावनाओं की ओर बहता है। और हमारा मन व्यर्थ के विचारों से भरा रहता है। जब हम साधना में लगते हैं तो यही भाव शुद्ध होकर भक्ति बन जाता है, और यही विचारों का ऊहापोह शांत होकर विवेक बन जाता है।

भक्ति व विवेक दोनों एक मंजिल पर पहुंचते हैं। शुरूआत में लगता है कि विपरीत हैं, लेकिन अंततः तुम पाओगे कि एक ही मंदिर तक दोनों ने पहुंचा दिया। ऐसा समझो कि हिमालय के शिखर एवरेस्ट पर पहुंचना है; अगर भारत की तरफ से चढ़ाई करोगे तो उत्तर की ओर मुंह करके चढ़ना होगा। मार्ग बिल्कुल अलग होगा, रास्ते के मुकाम भिन्न होंगे, राह के दृश्य अलग होंगे। यदि चीन की तरफ से एवरेस्ट पर चढ़ना शुरू किया, तो दक्षिण की तरफ मुंह होगा। दिशा भिन्न होगी, मार्ग के दृश्य अलग होंगे, सारी की सारी कहानी अलग होगी। लेकिन याद रखना चीन से चले तो एवरेस्ट पर पहुंच जाओगे और भारत से चले तब भी एवरेस्ट पर पहुंच जाओगे।

दोनों ही मार्ग परमात्मा तक पहुंच जाते हैं और कई बार हम पता नहीं लगा सकते कि हमारा मार्ग क्या है? चल–चल कर ही पता चलेगा। इसको ऐसे समझना जैसे बायां पैर और दांया पैर.... पहले तुमने कौन सा पैर उठाया बायां या दायां यह महत्वपूर्ण नहीं है, अतंतः तो दोनों ही पैरों का उपयोग होगा चलने में। जिस व्यक्ति ने पहले बायां उठाया, उसको बाद में दायां उठाना पड़ेगा। जिसने प्रथम दायां पैर उठाया उसको फिर बायां पैर उठाना पड़ेगा। यात्रा लम्बी है, और दोनों पैरों से ही पूरी होगी। लम्बी उड़ान भरनी है, असीम आकाश में। दो पंख चाहिए। ओशो कहते हैं– 'मेरे संन्यास के पंछी के दो पंख हैं– होश और प्रेम। ध्यान और भक्ति। संकल्प और समर्पण।'

संकल्प प्रयास का मार्ग है, समर्पण प्रसाद का मार्ग है। दोनों ही चाहिए, और ओशो जिसे ध्यान कह रहे हैं याद रखना वह दोनों का अभूतपूर्व समन्वय है। शुरू में तुम करो अपना मानवीय–प्रयास, और बाद में बरसेगा प्रभु–प्रसाद। पहले तुम अपना कर्म करो और तब प्रभु की कृपा खूब–खूब बरसेगी। मैं इन दोनों में कोई विरोध नहीं, वरन क्रमबद्धता देखता हूं। तुम पूछते हो कि बाएं पैर से चलें कि दाएं पैर से? जो तुम्हें भाता हो, जो तुम्हें सहज–सरल लगता हो। कभी–कभी ऐसा भी होता है कि हम कुछ सोच कर चले थे, और हो कुछ और जाता है। तुम चले थे भक्त बनने और योगी बन जाते हो। तुम चले थे योग साधना करने और अचानक तुम्हारा हृदय भक्ति भाव से आपूरित हो जाता है। यह सब संभव है, अतः पहले से ज्यादा गुणा–भाग मत करना। अधिक हिसाब–किताब न लगाना। तुम तो बस चल पड़ना, यात्रा शुरू कर देना; और परमात्मा के हवाले छोड़ देना... उसको जो पंसद हो। परमात्मा कुछ और तुम्हारे लिए योजना बनाकर बैठा होगा, वही होगा! तुम अपनी तरफ से कोशिश करो, जो तुम्हें उचित लगता है। किंतु अंतिम निर्णय सदा प्रकृति की तरफ से

आता है। एक बड़ा प्यारा गीत मैं पढ़ रहा था....

रूठे, तन की निजता ले ली; माने, मन का प्यार दे दिया।

रुष्ट हुए तो सांस मांग ली, रीझे तो संसार दे दिया।

परमात्मा का खेल... कभी सांस तक वापिस ले लेता है, कभी सारा संसार दे देता है! रूठे, तन की निजता ले ली; माने, मन का प्यार दे दिया। रुष्ट हुए तो सांस मांग ली, रीझे तो संसार दे दिया।

ऐसे कृपण कि बिना प्यार के, एक उम्र कट गई अबोली।

वह औघड़ दानी या झक्की, छोटी पड़ जाती है झोली।

बिगड़े तो हर बूंद बटोरी, वैसे पारावार दे दिया।

लेने लगे इकाई ले ली, देने लगे हजार दे दिया।

कुछ कहा नहीं जा सकता कि क्या होगा? 'लेने लगे इकाई ले ली, देने लगे हजार दे दिया।'

परिचय का विस्तार जहाँ तक, तुमको उसमें आगे माना।

जितना ज्यादा जाना तुमको, मैंने उतना कम पहचाना।

मौन हुए करुणा भी छीनी, बोले तो शृंगार दे दिया।

रोए तो सावन भी सोखे, गाए तो मलहार दे दिया।

साधक नहीं जातना कि वह भक्त हो सकेगा, या कि योगी हो पाएगा।

बिंदु से भी सूक्ष्म हो किंतु, तुम विराटता में सागर हो।

शीतल हो तो चंद्र सरीखे, तपो अगर तो सूर्य प्रखर हो।

सोए तो स्मृतियां समेट लीं, जागे जीवन ज्वार दे दिया।

हट कर लिया कनेर ना छोड़ा, दीया अगर कचनार दे दिया।

रूठे, तन की निजता ले ली; माने, मन का प्यार दे दिया।

रुष्ट हुए तो सांस मांग ली, रीझे तो संसार दे दिया।

ओशो का एक छोटा सा कोटेशन आपको सुनाना चाहूंगा। सुनो, ओशो क्या कहते हैं– 'सिर्फ छोड़ दो उस पर, बिल्कुल छोड़ दो उस पर... जो उसकी मर्जी, जो राम की मर्जी, और तुम चकित होओगे, भर जाएगी तुम्हारी झोली बहुत। और भर जाएगी वैसी, जैसी भरनी चाहिए। किसी की शून्य से, किसी की संगीत से। किसी की शब्द से किसी की

निशब्द से।' (प्रेम रंग रस ओढ़ चदरिया)

हम नहीं जानते कि क्या होगा,,, गीत फूटेंगे कि मौन बरसेगा। तो मीरा जैसे नाचोगे, नानक जैसे गाओगे, कि बुद्ध जैसे बुत बनकर बैठ जाओगे। कि महावीर जैसे पाषाण की मूर्ति हो जाओगे। तुम बिल्कुल स्थित-प्रज्ञा हो जाओगे, कि तुमसे नृत्य और उत्सव फूटेगा। कृष्ण की बांसुरी बजेगी, कि लाओत्से की चुप्पी छा जाएगी। तुम भी पहले से नहीं जानते, कोई भी नहीं जानता। तुम तो बस चलो, चलते-चलते ही रास्ता बनता है। और छोड़ो परमात्मा की मर्जी पर, जो उचित होगा तुम्हारे लिए, वही अपने-आप घटित होगा! चलो। उठो।

धन्यवाद।

# समस्याओं का समाधान

# 17
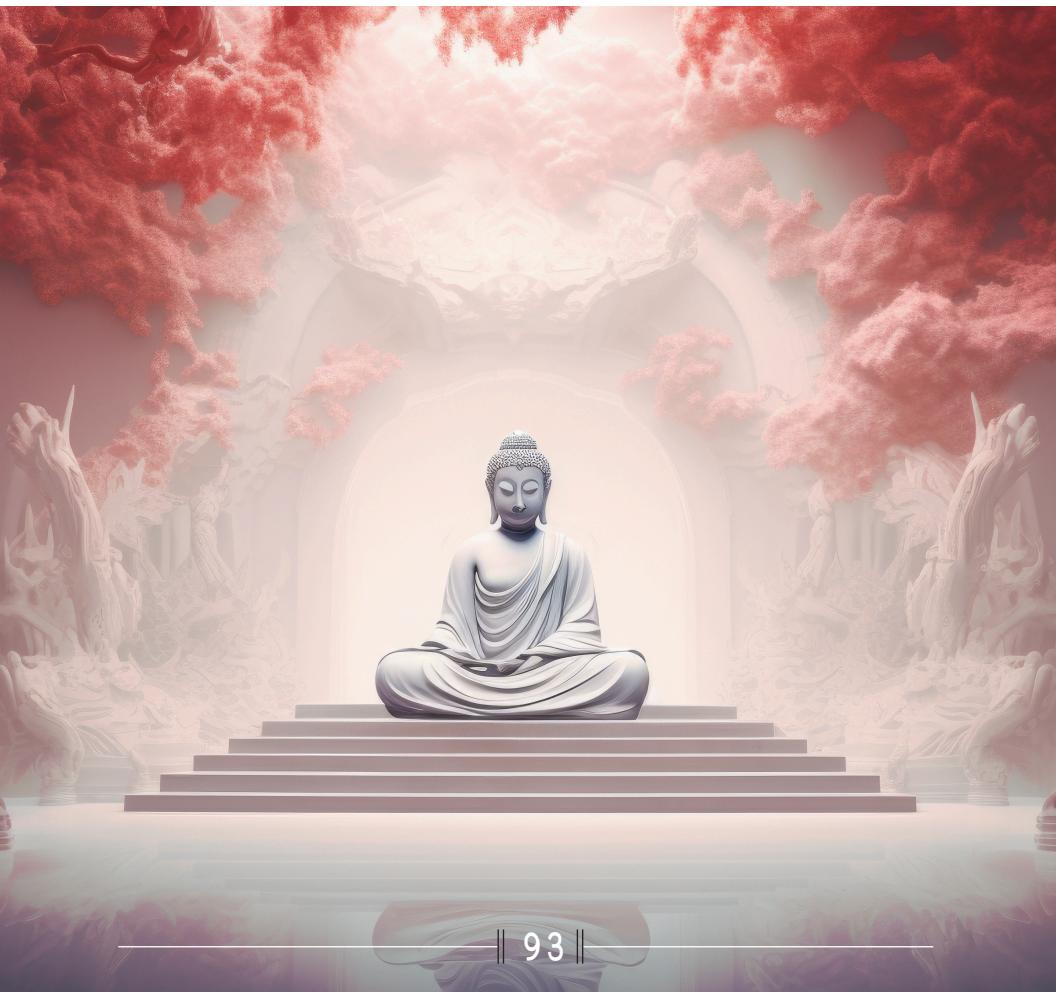
# हरि–स्मरण की महिमा

**प्रश्न– पूछा है श्री गोपाल श्रीवास्तव ने, कि उपनिषद के ऋषि कहते हैं– 'हरि ओम् तत्सत्'। चैतन्य महाप्रभु गााते थे– 'हरि बोलो, हरि बोल'। क्या हरि–हरि–हरि जपने से जीवन की समस्याओं का समाधान घट जाएगा? हरि–कीर्तन व हरि–स्मरण की इतनी महिमा क्या अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं लगती? क्या हरि का जप करने से जीवन की समस्याओं का समाधान घट जाएगा?**

ओशो शैलेन्द्र– गोपाल श्रीवास्तव, निश्चित ही घट जाएगा, यदि तुम हरि का अर्थ ठीक–ठीक समझ पाओ। हाँ! हरि–हरि जपने से, या दिन–रात बोलते रहने से, या किताब–कापियों में हरि–हरि लिखते रहने से, कि राम–राम लिखते रहने से तो समस्यायें हल न होंगी। लेकिन इसके वास्तिविक गहरे अर्थ को समझो।

संस्कृत भाषा में हरि के सौ से ज्यादा अर्थ हैं। एक प्रचलित अर्थ तो है– हरि यानि परमात्मा। और हरि का दूसरा अर्थ जो ओशो को प्रिय है– हरण करने वाला यानी चोर। परमात्मा से बड़ा कोई चोर नहीं है, वह तुम्हारा मन ही हर लेगा। तुम्हें ही हर लेगा। वह

'मास्टर थीफ' है, महाचोर है। बेचारा छोटा–मोटा चोर तुम्हारी धन–सामग्री वस्त्र–आभूषण आदि ही ले जाता है; कम से कम तुम्हें तो पीछे छोड़ जाता है। मैंने सुना है कि–

शराबी विचित्तरसिंह ने अपनी पत्नी को दुखी आवाज में फोन किया– मुझे घर आने में देर हो जाएगी, मेरी कार का स्टीयरिंग व्हील और गेयर, क्लच, एक्सीलेटर, ब्रेक वगैरह चोरी चले गए हैं। फिर 5 मिनिट बाद दुबारा प्रसन्न आवाज में फोन किया– अरे चिंता नहीं करो, मैं समय पर घर पहुंच जाउंफगा। कुछ चोरी–वोरी नहीं गया है। मैं नशे में कार की पिछली सीट पर जा बैठा था।

एक और लतीफा सुनो–

गांव की अस्पताल के पास पहली बार खुली एक नई बैंक की शाखा में चार सरदारों की गैंग ने डकैती की सोची। रात जब वे बैंक के अंदर घुसे तो देखकर हैरान रह गए कि न तो कोई सुरक्षा का इंतजाम है न ही लॉकर्स या तिजोड़ियां हैं। बस, रेफ्रीजरेटर्स में चिल्ड रेड वाइन की बोतलें भरी हैं। खैर, उन्होंने खूब सारी वाइन पी, और कुछ बोतलें अपने संग झोलों में भरकर घर ले गए। दूसरे दिन अखबार में खबर छपी– 'अस्पताल के पास खुले नए ब्लड–बैंक में चोरी।'

परमात्मा 'मास्टर थीफ' है, महाचोर है। वह तुम्हें ही हर लेगा। तुम पीछे बचोगे ही नहीं बस परमात्मा ही बचेगा– अद्वैत घटित हो जाएगा। हरि यानी असली हरणकर्ता।

एक और–

मुल्ला नसरुद्दीन के घर में सामान की पोटली बांधकर जैसे ही चोर घर से बाहर जाने लगा, उसके सुपुत्र फजलू की नींद खुल गई। उसने फुसफुसाकर कहा– अंकल थीफ, मेरा स्कूल बैग भी पोटली में बांधकर ले जाओ, वरना अभी चिल्लाकर घर वालों को जगा दूंगा।

तुम जाग जाओ, तो परमात्मा तुम्हारे अहंकार के बैग को भी पोटली में बांधकर ले जाए। इस ओम् की ध्वनि में डूबते–डूबते एक दिन सारी समस्याओं का समाधान हो जाता है, इसलिए हम उस अवस्था को समाधि कहते हैं। अहंकार ही समस्याओं की पोटली है। समाधि अर्थात जहाँ सब समाधान हो गए, कोई समस्याएं न बचीं। हरि ओम् तत्सत् के वास्तविक अर्थ को समझो तब तुम पाओगे यह जीवन में क्रांति का सूत्र बन सकता है।

मन है समस्याओं की जड़ और इसका हरण होगा ओंकार में डूबकर। निवार्ण उपनिषद का ऋषि संन्यासी की परिभाषा करते हुए कहता है कि संन्यासी वह है जो अजपा गायत्री में डूबा है, जिसका मंत्र अनाहत है। गायत्री का पाठ करने से कुछ न होगा न ही किसी अन्य मंत्र का जाप करने से कोई आत्म–कल्याण होगा। निर्वाण उपनिषद का ऋषि कहता है,

संन्सासी वह है जिसकी गायत्री अजपा है। जिसको जपना नहीं पड़ता उसका इशारा ओंकार की तरफ है।

अगले सूत्र में वह कहता है कि अनाहत जिनका मंत्र और अक्रिया जिनकी प्रतिष्ठा है वे संन्यासी हैं। मन का निरोध ही उनकी झोली है। हम जिस हरि, या राम, या ईश्वर का उच्चारण करेंगे वह तो निश्चित ही कंठ से या मन से करेंगे। किंतु ऋषि ने तो पहले ही शर्त लगा दी कि मन का निरोध जब हो जाए..... तब तो मन से कहा गया राम या हरि शब्द काम न आएगा, वह जो मन के पार गूंज रही आवाज है, उसमें डूबना सीखना होगा। उसी को अनाहत मंत्र कहा है। आहत यानि चोट, अनाहत यानि बिना चोट की ध्वनि।

संसार की सारी आवाजें तो चोट से पैदा होती हैं। कोई दो चीजें टकराती हैं, मैं बोल रहा हूं तो मेरे कंठ में वोकल-कार्ड्स से हवा टकरा रही है और मेरी जीभ तालू से। ओंठ, ओंठ से टकरा रहे हैं तब आवाज पैदा हो रही है। दो की टक्कर है। हवा चलती है, पत्ते खड़खड़ाते हैं, नदी बहती है, कल-कल की ध्वनि होती है क्योंकि पानी चट्टानों से टकरा रहा है। जहाँ भी आवाज है जगत में वहाँ दो हैं। परमात्मा तो अकेला है, अद्वैत है। वहाँ चोट कैसे होगी, किसके बीच में होगी? इसलिए वहाँ जो ध्वनि होती है वह अनाहत ध्वनि है। वह अनाहत ध्वनि ही परमात्मा है। हरि ओम् तत्सत् का ऐसा अर्थ है।

जब चैतन्य महाप्रभु गाते हैं हरि बोल, हरि बोल, वे उस हरि की ओर ही इशारा कर रहे हैं जो ओम् की ध्वनि है, जापान के झेन फकीर उसे 'एक हाथ की ताली' पुकारते हैं। हेराक्लाइटस उसे 'दि हिडन हारमोनी' और संत लाओत्से उसे 'दि ग्रेट म्युजिक' नाम से संबोधित करते हैं। ओंकार को ही 'दि फर्स्ट प्रिंसिपल' अर्थात् 'सर्वप्रथम सिद्धांत' अथवा मुसलमानों की भाषा में 'अव्वल' भी कहा जाता है।

एक बार एक वेदांती पंडित का मैं प्रवचन सुन रहा था। वह यमराज और नचिकेता की कहानी सुना रहे थे। आपने भी सुनी होगी वह कहानी! बचपन से ही हमारे देश में सभी ने सुनी है कि नचिकेता का पिता नाराज हो गया और उसने गुस्से में नचिकेता को मृत्यु के देवता को दान दे दिया। उसने कहा कि तुझे यमराज को दान करता हूं।

वह छोटा बच्चा नचिकेता पहुंचता है यम के द्वार पर। यम की पत्नी उसे मिलती है, वह कहती है कि यमराज तो अभी बाहर गए हैं, थोड़ा इंतजार करना होगा। वह इंतजार करता है। यम की पत्नी कहती है, बेटा खाना खा ले, पानी पी ले..... वह कहता है नहीं; अभी कैसा भोजन, अभी कैसा विश्राम? पहले जिस काम से आया हूं वह तो हो जाए! तीन दिन तक वह प्रतीक्षा करता है। तीन दिन बाद यमराज आते हैं। इस छोटे से बच्चे की लगन

देखकर बहुत प्रसन्न होते हैं और कहते हैं– तू वरदान मांग ले तू क्या चाहता है? दुनिया का चक्रवर्ती सम्राट हो जा। वह छोटा बच्चा पूछता है कि क्या चक्रवर्ती सम्राट होने से मेरे मन में शांति हो जाएगी?

यमराज भी उससे झूठ नहीं बोल पाते। इतने भोले बच्चे के सामने मौत भी धोखा नहीं दे सकती। यमराज कहते हैं– नहीं, शांति तो नहीं होगी। चक्रवर्ती सम्राट होने से तो और समस्यायें बढ़ जाएंगी। दुनियां भर की समस्याएं तेरे सिर पर खड़ी हो जाएंगी। तो नचिकेता ने कहा आप प्रसन्न होकर वरदान दे रहे कि अभिषाप दे रहे हैं। मृत्यु के देवता ने कहा– तू लंबी उम्र मांग ले? हजारों साल जीना, हजार, दस हजार, एक लाख साल जीना.... जितनी तेरी इच्छा हो। उस छोटे बच्चे ने बड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न पूछा, जो शायद बड़े–बूढ़े भी न पूछते। उसने पूछा कि क्या इससे मुझे संतुष्टि हो जाएगी, लंबी आयु तक जीकर। यमराज ने कहा– नहीं, संतुष्टि तो नहीं होगी। कामनाएं तो कभी तृप्त होती नहीं; तू हजार साल जी, चाहे लाख साल जी, चाहे दस लाख साल जी.... और अंत में तो मृत्यु होगी ही!

नचिकेता ने कहा– फिर लाभ क्या अधिक जीने का? कितना ही लंबा जिओ अंत में तो मर ही जाना है। कहानी तो वही की वही रही। मृत्यु आएगी अंत में, सब किया–धरा बराबर हो जाएगा– शून्य हो जाएगा।

यमराज ने और कई प्रलोभन दिए। नचिकेता ने एक ही सवाल बार–बार पूछता गया, कि क्या इससे मेरे जीवन में परितोष घटित होगा? क्या मैं संतुष्ट जा जाउंगा? यमराज को बारंम्बार कहना पड़ा– नहीं। नचिकेता ने कहा कि फिर मुझे वही चीज बताएं जिसे पाकर जीवन में संतोष मिले, आनंद मिले।

वे वेदांती पंडित ये कहानी सुना रहे थे। मैंने उनसे पूछा– इसके बाद बताएं, फिर क्या हुआ? ये कहानी तो हमने सुनी है बचपन से अधिकांश लोगों को पता ही है। वे कहने लगे बस यही तो कठोपनिषद की कहानी और इसके आगे क्या? मैंने पूछा– इसके आगे यमराज ने फिर क्या बताया? वे कहने लगे कि बताया परमात्मा के बारे में, अमृत के बारे में। मृत्यु का राज समझाया। मैंने कहा– नहीं, गोल–गोल मत घुमाइए, आप 'पिन प्वांइटेड' बताइये कि यमराज ने क्या बताया? कौन सा था वह राज आप भी सबको समझाइए, क्योंकि असली बात तो कहानी नहीं है। ये तो सिर्फ कहानी मात्र है समझाने के लिए कि आगे जो बात बताई जा रही है वह लाखों वर्ष की उम्र से ज्यादा और पृथ्वी के सम्राट हो जाने से भी अधिक महत्वपूर्ण है। ये तो कहानी है मनगड़ंत न तो कहीं नचिकता है न तो कहीं यमराज है। यह तो प्रतीकात्मक बोधकथा है। असली बात तो अब

इस कथा के बाद आती है। वे कहने लगे बस इतनी ही है कहानी।

मैंने उन्हें याद दिलाया कि इसके आगे का सूत्र इस प्रकार है– यमराज ने कहा 'तू नहीं मानता तो फिर तुझे बताता हूं असली बात। तुझे परमात्मा का रहस्य बताता हूं जिसे जानकर परम आनंद घटित होगा। यम ने कहा संपूर्ण वेद जिस परमपद का बारंबार प्रतिपादन करते हैं और संपूर्ण तप जिस पद का लक्ष्य कराते हैं वह पद मैं तुम्हें संक्षिप्त में बतालाता हूं वह है 'ओम्'– ऐसा यह एक अक्षर। यह अक्षर ही तो ब्रह्म है। और यह अक्षर ही तो परमब्रह्म है।

यमराज ने उपरोक्त वचन कहा। इस एक पंक्ति को हाईलाईट करने के लिए उपनिषद के ऋषि के द्वारा बाकी की कथा गढ़ी गई। और कठोपनिषद की शुरूआत यह होती है कि इस सच्चिदानंद घनरूप परमात्मा के नाम का स्मरण करके हम उपनिषद का आरंभ करते हैं। और यह कहानी न केवल कठोपनिषद की है, न केवल निर्वाण उपनिषद की है, यही ईशावास्योपनिषद की भी है। ऋषि शुरूआत करता है कि ओम्.... वह पूर्ण है। याद रखना 'वह' से मतलब ओम् का है। ओम्!... वह पूर्ण है, और यह भी पूर्ण है। पूर्ण से पूर्ण की उत्पत्ति होती है। पूर्ण का पूर्णत्व लेकर भी पूर्ण ही शेष बच रहता है। सभी उपनिषद समाप्त होते हैं एक ही वचन पर– ओम् शांतिः शांतिः शांतिः। अर्थात ओंकार में डूबकर ही शांति मिलती है। गोपाल श्रीवास्तव, सब समस्याओं का समाधान हो जाता है। ओम् ही शांति का स्रोत है।

एक छोटा सा उपनिषद है 'आत्मपूजा उपनिषद'। कुल छोटी–छोटी सत्रह पंक्तियां हैं उसमें, बस! चाहो तो एक छोटे से पोस्टकार्ड पर पूरा उपनिषद लिख सकते हो। उसकी पहली पंक्ति है– 'वह ओम् है और उसका स्मरण ध्यान है।' अगर यह एक सूत्र पकड़ में आ गया तो बाकी सोलह पंक्तियां पढ़ने की भी जरूरत नहीं। सारी सार्थक बात एक सूत्र में समा गई है। ओशो ने शांडिल्य–सूत्र पर प्रवचन दिए– 'अथातो भक्ति जिज्ञासा' नामक प्रवचनमाला में। उसकी पहली ही पंक्ति में शांडिल्य कहते हैं– 'ओम्! अथातो भक्ति जिज्ञासा' अर्थात ओंकार में डूबने से ही भक्ति की शुरूआत होती है। ओंकार से प्रीति का नाम ही भक्ति है। ठीक इसी प्रकार जपुजी साहब में गुरु नानकदेव जी की पहली ही पंक्ति है– 'एक ओंकार सतनाम'....वह एक ओंकार स्वरूप है, यही उसका सच्चा नाम है। सूफियों ने परमात्मा के सौ नाम रखे, लेकिन उनकी सूची पढ़ो तो सिर्फ निन्यान्बे ही मिलेंगे। एक मिलेगा नहीं, क्यों? क्योंकि वह लिखा–कहा नहीं जा सकता, वह अकथनीय, अवर्णनीय, ओंकार है।

ओम् का तुम जो अर्थ समझते हो वैसा अर्थ नहीं है। जो हम मुंह से बोल सकें वह नहीं।

इसलिए उसे अनलिखा छोड़ दिया। और हिंदुओं ने भी इसिलए ओम् का एक अलग–सा चित्रमय प्रतीक बनाया, भाषा के वर्णाक्षरों....अ..ब..स..द...में नहीं लिखा। ताकि यह पता चले कि वह हमारी भाषा का हिस्सा नहीं है। हम कंठ से बोल सकें वह ऐसा शब्द नहीं है। वह ओम् अस्तित्व की ध्वनि है। वही परमात्मा है। और वह महाचोर ध्वनि है। वह तुम्हें तुम्हीं से चुरा लेगी। और उसी में समस्याओं का विर्सजन है। जब तक तुम हो, तुम्हारा अहंकार है, तब तक समस्याएं ही समस्याएं हैं। जिस दिन तुम खो जाओ, मिट ही जाओ, उस दिन समस्याओं का विर्सजन है। तुम ही तो समस्या हो। इसीलिए ऋषिगण कहे जाते हैं– हरि ओम् तत्सत्। चैतन्य महाप्रभु गाते हैं हरि बोलो, हरि बोल।

एक बार हरि से परिचित हो जाओ, फिर उसका स्मरण करना बड़ा आसान है। पहले जान लो, अनुभव कर लो, तब स्मृति अपने–आप सधने लगेगी। ज्यों–ज्यों ओंकार–सुमिरन गहराने लगेगा, अहंकार–स्मरण घटने लगेगा। अहंकार–स्मरण यानी समस्या की जड़– व्याधि। ओंकार–सुमिरन यानी समाधान का सूत्र– समाधि। अहंकार केंद्रित जीवन यानी दुख। ओंकार केंद्रित जीवन यानी आनंद। गोपाल श्रीवास्तव, अध्यात्म की यात्रा बड़ी छोटी–सी है– अहंकार से ओंकार तक।

धन्यवाद।

# 18

# अध्यात्म जरूरी क्यों?

**प्रश्न– श्री संतोष जैन ने एक प्रश्न पूछा है कि ध्यान, धर्म, अध्यात्म, दर्शन शास्त्र आदि की जरूरत क्या है? क्या पशु–पक्षियों, पेड़–पौधों, और मछलियों की तरह मनुष्य भी बिना मंदिरों और गुरुओं के चैन से नहीं रह सकता?**

ओशो शैलेन्द्र– संतोष जैन, अगर चैन से रह सकता तो रह ही लिया होता। किसी मछली ने आकर आज तक यह सवाल नहीं पूछा.... वे चैन से रह ही रही हैं। किसी पक्षी ने नहीं पूछा, न पेड़–पौधे ने कभी पूछा। किंतु यह प्रश्न तुम्हारे भीतर पैदा हो रहा है। सोचो, क्यों पैदा हो रहा है?

मनुष्य बिना प्रश्न के नहीं रह सकता। और उसका कारण है– पशु–पक्षियों में और मनुष्यों में एक विशेष भेद है, केवल मनुष्य ही मृत्यु–बोध से भरता है। मैं मरूंगा– ऐसा ख्याल किसी पक्षी को नहीं आता, किसी मछली को नहीं आता, किसी पेड़–पौधे को नहीं आता। दूसरों को मरते तो वे भी देखते हैं मगर स्वयं की मृत्यु के प्रति सचेत नहीं होते। जन्म मृत्यु में परिवर्तित हो रहा है, जीवन की सरिता बह रही है– अज्ञात की ओर!

ये जीवन है, एक बहती धारा;  
ना घाट है, ना बाट है, ना कोई किनारा।  
कोई ना जाने, ये कहाँ से आए;  
कोई ना जाने, ये कहाँ को जाए।

बस चलते ही जाना, है इसको प्यारा।
जैसे पंछी कोई, एक नीड़ बनाता;
नभ में उड़ता, फिर घर को आता।
बस उड़ते ही जाना, है इसको प्यारा।
जैसे झरना पर्वत में इक झील बनाता;
वैसे गुरु को पाकर, शिष्य मंजिल पा जाता।
जग में सबसे प्यारा, सद्गुरु हमारा।
वह बादल ही क्या, जो बरस न जाए?
वह पतझड़ ही क्या, ऋतुराज न लाए?
चलने का है आनंद कि जब विश्राम हो प्यारा।

हर ऋतुराज के बाद पतझड़ है। प्रतिक्षण जिंदगी मौत के मुंह में जा रही है। किंतु कुछ भाग्यशाली मनुष्य ही इस सत्य को देख पाते हैं। मैंने सुनी है एक कहानी। एक जादूगर था उसके पास बहुत सारी भेड़ें थीं, रोज एक भेड़ को वह काटता अपने भोजन के लिए। लेकिन किसी भेड़ को कोई चिंता नहीं होती थी। एक आदमी ने उससे पूछा कि ये भेड़ें भाग नहीं जातीं, ये तुमसे डरती नहीं? तुम रोज एक भेड़ को मारते हो, दूसरी भेड़ें तुमसे डरती नहीं? भयभीत नहीं होतीं? उस जादूगर ने कहा कि मैंने जादू के माध्यम से हर भेड़ को 'हिप्नोटाईज' करके कह दिया, कि तुम एक विशेष भेड़ हो–'यू आर समबडी स्पेशल' तुम नहीं मरोगी। दूसरी साधारण भेड़ें काटी जाएंगी, तुम चिंता न करना; तुम अमर हो, तुम्हें कभी नहीं काटा जाएगा। करीब–करीब ऐसी सम्मोहित स्थिति सभी जानवरों की एवं बहुतेरे मनुष्यों की भी है।

अरबी कहावत है कि परमात्मा ने मजाक करके संसार में हमें भेजा है– हरेक को बनाने के बाद, पास बुलाकर कान में फुसफुसाकर उसने कहा कि तुम कुछ विशिष्ट हो–'यू आर समबडी स्पेशल'। तुम्हारे जैसा अदभुत आदमी न कभी बनाया और न कभी आगे बनाउंफगा। तुम अनूठे हो।

.....और इसलिए धरती पर करोड़ों–करोड़ों लोग इस भांति जीते हैं कि जैसे मौत उनके पास आएगी ही नहीं! जानते हो, यदि कोई आतंकवादी घटना न घटे और युद्ध न हो तो छः अरब की आबादी में लगभग दो लाख व्यक्ति प्रतिदिन मरते हैं। सामान्य परिस्थितियों में दो लाख आदमी रोज गायब हो जाते हैं, फिर भी कितने कम लोगों को ख्याल आता है कि 'मेरी मृत्यु होगी'। यद्यपि सब चीजें बदल रहीं हैं.... तुम बच्चे थे जवान हो गए, जवान से प्रौढ़ हो गये, प्रौढ़ से बूढ़े होने लगे। बूढ़े से बूढ़े आदमी को भी अपनी मौत का ख्याल नहीं आता। अधिकांश लोग पशु–पक्षियों की भांति ही जी रहे हैं, बहुत कम लोग मनुष्यों में, अभी वास्तव में मनुष्य हुए हैं। जिसके भीतर मन पैदा हुआ, मन में प्रश्न पैदा हुआ, वही सचमुच में मनुष्य हुआ है।

मृत्यु–बोध हमें जगाता है, चौंकाता है। और जहाँ मृत्यु का ख्याल आया, वहाँ अमृत की तलाश शुरू होती है। यदि मौत न होती तो धर्म भी न होता, मंदिर–मस्जिद भी न होते, शास्त्र भी न होते, अध्यात्म भी न होता। मौत की बड़ी कृपा है, उसी के कारण हम चेतते हैं। जीवन तो हमें सुलाए रखता है, मौत हमें जगा देती है। अभी ठंड का मौसम जा रहा है, फिर गरमी आ जाएगी,

फिर बरसात जा जाएगी, फिर ठंड आ जाएगी। अभी बसंत के दिन आने वाले हैं, जल्दी ही पतझड़ आने वाला होगा। केवल मनुष्य ही इस बात के प्रति जाग पाता है। अभी स्वास्थ्य...अभी बीमारी, अभी सूर्योदय...अभी सूर्यास्त, अभी दिन...अभी रात, अभी जन्म हुआ नहीं कि मृत्यु की तैयारी शुरू हो गई।

इस जिंदगी में कुछ भी बना नहीं रह पाता, स्थिर नहीं हो पाता। एक गीत मैं पढ़ रहा था बसंत के ऊपर..........

फूलों को मैंने खिलते और बिखरते दोनों देखा है।
कैसे कह दूं उपवन, तेरा मधुमास बना रह पाएगा।
होते हैं जहाँ फूल लाखों, पतझार वहीं पर आता है।
पतझार जहाँ डसता होता, मधुमास नहीं मुस्काता है।
यह परिवर्तन की धूप–छांव, जग जीवन का शाश्वत क्रम है।
केवल मुस्काने की उमंग सपनों में पलता विभ्रम है।
सपनों को मैंने बनते और टूटते दोनों देखा है।
कैसे कह दूं हर स्वप्न तुम्हारा, पूरा ही हो पाएगा।
जिन नैनों में मधु स्वप्न भरे, उनमें ही आंसू पलते हैं।
जिन अधरों से है तृप्ति सुखद, वे ही तृष्णा में जलते हैं।
सपने तो रूठे नैनों से, पर चुका न आंसू का सागर।
खारी जल बढ़ता रहा और, फूटी केवल रीती गागर।
गागर को मैंने भरते और फूटते दोनों देखा है।
कैसे कह दूं यह कलश तुम्हारा, सदा भरा रह पाएगा।
जो भी जन्मा इस धरती पर, पैदा होते ही रोया है।
जागा जीवन भर रोते ही, दो पल न चैन से सोया है।
सुख रूप और श्रृंगार सदा, महका दो दिन फिर चला गया।
जिसने अभिमान किया निज पर, वह अहम् स्वयं से छला गया।
सूरज को मैंने चढ़ते और उतरते दोनों देखा है।
कैसे कह दूं अभिमान तुम्हारा, तुम्हें अमर कर पाएगा।

प्रज्ञावान मनुष्य चौंकता है, जागता है....जो चीज जन्मी है वह नष्ट होगी। और इसीलिए धर्म की जरूरत है। क्योंकि धर्म अर्थात– 'अमृत की खोज'। क्या मृत्यु के पार भी कुछ है? क्या कोई शाश्वत सत्य है? अगर है तो उसे खोजना होगा। फिर चैन नहीं हो सकती। याद रखना, मनुष्य तनाव की स्थिति का ही नाम है, मनुष्य एक बेचैनी का नाम है, ऐसा समझो की एक नदी के दो किनारे हैं– एक तरफ पशुता, और दूसरी तरफ प्रभुता। और बीच में है मनुष्य, एक सेतु पा खड़ा हुआ, वह खड़ा नहीं रह सकता; उसे उस पार जाना ही होगा।

पशुओं से हमारा विकास हुआ, हम धीरे–धीरे मनुष्य बने। लेकिन पुल पर कोई निवास स्थान नहीं बन सकता। हमें आगे जाना ही होगा। जब तक हम प्रभुत्व को न पा लें, जब तक हम

भगवत्ता को न जान लें, बुद्धत्व को उपलब्ध न हो जाएं, तब तक कोई चैन नहीं हो सकता। हाँ! पशु पक्षी चैन से रहते हैं, और बुद्ध पुरुष भी चैन से रहते हैं। लेकिन बीच में जो आदमी है वह तो स्वाभवतः बेचैन रहेगा। और इसलिए मंदिर बनते हैं, इसलिए धर्म खड़े होते हैं, इसलिए शास्त्र रचे जाते हैं। कोई पशु शास्त्र नहीं लिखता, कोई पशु मंदिर नहीं बनाता हाँ! घोंसले सभी पक्षी बनाते हैं, रहने के लिए स्थान पशु भी बनाते हैं; लेकिन मंदिर वे नहीं बनाते। उन्हें अमृत की तलाश नहीं है, क्योंकि मृत्यु का बोध ही नहीं है।

....तो मनुष्य होना एक प्रकार से सौभाग्य है कि हम आगे और विकसित हो सकेंगे। और एक प्रकार से दुर्भाग्य भी है कि हम जिंदगी भर तनाव ग्रस्त रहेंगे। लेकिन ये तनाव हितकारी है, कल्याणकारी है। यदि ये तनाव न होता तो हम फिर कभी विकसित नहीं होते, और इसलिए बहुत लोगों के मन में शराब और मादक द्रव्यों के प्रति जो आकर्षण रहता है उसका कारण भी समझना– शराब फिर पशुओं की तरह मूर्च्छित कर देती है, थोड़ी देर के लिए पुनः जानवरों की तरह हम हो जाते हैं। एक प्रकार का झूठा चैन मिल जाता है, एक झूठी शांति....क्षणभंगुर ही सही! कुछ घंटे बाद नशा उतर जाएगा, फिर बेचैनियां, परेशानियां, सभी समस्याएं वहीं के वहीं खड़ी मिलेंगी। नहीं, यह कोई स्थायी उपाय नहीं है। असली उपाय तो एक ही है– बेहोशी नहीं, वरन हम और–और अधिक होश को साधें, चैतन्यता को विकसित करें। हम भगवत्ता को जानें। तब एक नई प्रकार की शांति, जो स्थायी शांति होगी, वह प्राप्त हो सकेगी।

ओशो का एक प्रवचनांश पढ़कर सुनाता हूं–

ओशो कहते हैं– 'बसंत आते हैं जाते हैं, जीवन आता है बिखरता है। फूल खिलते हैं, धूल में मिल जाते हैं। इस क्षणभंगुरता को स्मरण रखो, सदा स्मरण रखो। क्योंकि इस क्षणभंगुरता का स्मरण बना रहे तो शाश्वत की खोज पैदा हो सकती है। क्योंकि क्षणभंगुर तृप्त नहीं कर सकता। इनका भरोसा क्या है? थोड़ी देर के सपने और टूटे, और फिर कितने ही प्रीतिकर सपने क्यों न हों, जब टूट ही जाने हैं तो एक बात निश्चित है– वही टूटता है जो है ही नहीं। यह धर्म की शाश्वत आधार शिलाओं में से एक है, वही टूटता है, जो नहीं है। जो है, वह सदा है। जो है, वह न तो आता और न जाता। जो आता है, जाता है, वह नहीं है; इसलिए आते–जाते को माया कहा है। माया का इतना ही अर्थ है कि– बस लगता है कि है; ठीक से लग भी नहीं पाता कि हाथ से छिटक जाता है। बिखर जाता है। मनुष्य की खूबी यही है– अन्य पशु–पक्षियों से भिन्नता, कि वह क्षणभंगुरता को देख पाता है। और इसलिए शाश्वत की खोज शुरु हो सकती है।'

'मनुष्य जैसा है वैसा चैन से नहीं रह सकता और यह शुभ है, यह सुंदर है। ये कोई नकारात्मक बात नहीं है, क्योंकि यही उसके और विकसित होने का कारण और प्रेरणा है।' (प्रेम रंग रस ओढ़ चदरिया, प्रवचन–9)

यदि मृत्यु न होती, यदि आदमी पशुओं की भांति शांत और चैन से रह सकता, तो फिर याद रखना बुद्ध भी न होते, महावीर भी न होते, कृष्ण भी न होते, ओशो भी न होते। यह बेचैनी हमारा सौभाग्य है। थोड़े विधायक दृष्टिकोण से देखो। और तब तुम पाओगे कि धर्म की ईजाद सांयोगिक नहीं है। यातायात के साधन तो अभी कुछ तीन–चार सौ सालों में विकसित हुए....पहले तो लोग जानते ही नहीं थे कि आस्ट्रेलिया भी कहीं है, कि अमेरिका भी कहीं है। अमेरिका वालों को पता

नहीं था भारत भी कहीं है। लेकिन एक आश्चर्य की बात है कि मनुष्य जहाँ भी था पृथ्वी पर सब जगह मंदिर की ईजाद हुई। सब जगह अध्यात्म का रास्ता खोजा गया। ये कोई ऐसी बात नहीं कि हमने एक दूसरे से सीख लीं। अभी एक दूसरे से मिलना तो दो–चार सौ साल पहले ही हुआ है! लेकिन सब तरफ वह जो बेचैनी है, वह जो तड़फ है, वह जो आदमी की रेस्टलेसनेस है; वह उसे मजबूर करती है, वह उसे प्रेरित करती है, कि वह शाश्वत को और अमृत को खोजे। इसलिए धर्म की खोज सांयोगिक नहीं है, यह मनुष्य का सौभाग्य है। किसी जाति विशेष द्वारा अध्यात्म का आविष्कार नहीं हुआ, वह सभी के प्राणों की प्यास है।

संतोष जैन; मनुष्य को ध्यान, धर्म, अध्यात्म, दर्शन शास्त्र आदि की बुनियादी जरूरत है। केवल रोटी, कपड़ा, मकान, और काम वासना की आवश्यकता को ही पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। तुम पूछते हो कि पशु–पक्षियों, पेड़–पौधों, और मछलियों की तरह मनुष्य बिना मंदिरों और गुरुओं के चैन से नहीं रह सकता?

नहीं रह सकता। रहना भी नहीं चाहिए। मनुष्य जागता है, चौंकता है, बनती चीजों को बिगड़ते देखता है। देखना ही चाहिए, अन्यथा वह नाम मात्र को ही मनुष्य है; अभी पशु से ऊपर विकसित नहीं हुआ।

फूलों को मैंने खिलते और बिखरते दोनों देखा है।
कैसे कह दूं उपवन तेरा, मधुमास बना रह पाएगा।
सपनों को मैंने बनते और टूटते दोनों देखा है।
कैसे कह दूं हर स्वप्न तुम्हारा पूरा ही हो पाएगा।
गागर को मैनें भरते और फूटते दोनों देखा है।
कैसे कह दूं यह कलश तुम्हारा, सदा भरा रह पाएगा।
सूरज को मैनें चढ़ते और उतरते दोनों देखा है।
कैसे कह दूं अभिमान तुम्हारा तुम्हें अमर कर पाएगा।

धन्यवाद।

## जगत क्रांति का सूत्र–
## धर्म और विज्ञान का मिलन

**प्रश्नकर्ता– विगत तीन सदियों में विज्ञान ने जगत में क्रांति कर दी है। ओशो की दृष्टि में भावी मनुष्यता किस दौर से गुजरेगी? धर्म का क्या स्थान होगा?**

ओशो शैलेन्द्र– इस संबंध में 'ध्यान सूत्र' प्रवचनमाला में परमगुरु ओशो ने जो कहा है, वह ध्यानपूर्वक सुनो– 'विज्ञान से अर्थ ज्ञान की उस पद्धति का है, जो पदार्थ में छिपी हुई अंतस शक्ति को खोजती है। धर्म से अर्थ उस ज्ञान की पद्धति का है, जो चेतना के भीतर छिपी हुई अंतस शक्ति को खोजती है। धर्म और विज्ञान का कोई विरोध नहीं है, वरन् धर्म और विज्ञान परिपूरक हैं।

जो युग मात्र वैज्ञानिक होगा, उसके पास सुविधा तो बढ़ जाएगी, लेकिन सुख नहीं बढ़ेगा। जो युग मात्र धार्मिक होगा, उसके कुछ थोड़े-से लोगों को सुख तो उपलब्ध हो जाएगा, लेकिन अधिकतर लोग असुविधा से ग्रस्त हो जाएंगे। विज्ञान सुविधा देता है, धर्म शांति देता है। सुविधा न हो, तो बहुत कम लोग शांति को उपलब्ध कर सकते हैं। शांति न हो, तो बहुत लोग सुविधा को उपलब्ध कर सकते हैं, लेकिन उसका उपयोग नहीं कर सकेंगे।

अब तक मनुष्य ने जिन सभ्यताओं को जन्म दिया है, वे सब सभ्यताएं अधूरी और खंडित थीं। पूरब ने जिस संस्कृति को जन्म दिया था, वह संस्कृति विशुद्ध धर्म पर खड़ी थी। विज्ञान का पक्ष उसका अत्यंत कमजोर था। परिणाम में पूरब परास्त हुआ, दरिद्र हुआ, पराजित हुआ। पश्चिम ने जो संस्कृति पैदा की है, वह दूसरी अति, दूसरी एक्सट्रीम पर है। उसकी बुनियादें विज्ञान पर रखी हैं और धर्म का उससे कोई संबंध नहीं है। परिणाम में पश्चिम जीता है। धन, समृद्धि, सुविधा उसने इकट्ठी की है। लेकिन मनुष्य की अंतरात्मा को खो दिया है।

भविष्य में जो संस्कृति पैदा होगी, अगर वह संस्कृति मनुष्य के हित में होने को है, तो उस संस्कृति में धर्म और विज्ञान का संतुलन होगा। उस संस्कृति में धर्म और विज्ञान का समन्वय होगा। वह संस्कृति वैज्ञानिक या धार्मिक, ऐसी नहीं होगी। वह संस्कृति वैज्ञानिक रूप से धार्मिक होगी या धार्मिक रूप से वैज्ञानिक होगी। ये दोनों प्रयोग असफल हो गए हैं। पूरब का प्रयोग असफल हो गया है। पश्चिम का प्रयोग भी असफल हो गया है। और अब एक मौका है कि हम एक जागतिक, यूनिवर्सल प्रयोग करें, जो पूरब का भी न हो, पश्चिम का भी न हो। और जिसमें धर्म और विज्ञान संयुक्त हों। तो मैं आपको कहूंगा, धर्म और विज्ञान का कोई विरोध नहीं है, जैसे शरीर और आत्मा का कोई विरोध नहीं है। जो मनुष्य केवल शरीर के आधार पर जीएगा, वह अपनी आत्मा खो देगा। और जो मनुष्य केवल आत्मा के आधार पर जीने के प्रयास करेगा, वह भी ठीक से नहीं जी पाएगा, क्योंकि शरीर को खोता चला जाएगा।

जिस तरह मनुष्य का जीवन शरीर और आत्मा के बीच एक संतुलन और संयोग है, उसी तरह परिपूर्ण संस्कृति विज्ञान और धर्म के बीच संतुलन और संयोग होगी। विज्ञान उसका शरीर होगा, धर्म उसकी आत्मा होगी। लेकिन यह मैं आपसे कह दूं, अगर कोई मुझसे यह पूछे कि अगर विकल्प ऐसे हों कि हमें धर्म और विज्ञान में से चुनना है, तो मैं कहूंगा कि हम धर्म को चुनने को राजी हैं। अगर कोई मुझसे यह कहे कि विज्ञान और धर्म में से चुनाव करना है, दोनों नहीं हो सकते, तो मैं कहूंगा, हम धर्म को लेने को राजी हैं। हम दरिद्र रहना और असुविधा से रहना पसंद करेंगे, लेकिन मनुष्य की अंतरात्मा को खोना पसंद नहीं करेंगे।

उन सुविधाओं का क्या मूल्य है, जो हमारे स्वत्व को छीन लें! और उस संपत्ति का क्या मूल्य है, जो हमारे स्वरूप से हमें वंचित कर दे! वस्तुतः न वह संपत्ति है, न वह सुविधा है।

मैं एक छोटी-सी कहानी कहूं, मुझे बहुत प्रीतिकर रही। मैंने सुना है, एक बार यूनान का एक बादशाह बीमार पड़ा। वह इतना बीमार पड़ा कि डाक्टरों ने और चिकित्सकों ने कहा कि अब वह बच नहीं सकेगा। उसकी बचने की कोई उम्मीद न रही। उसके मंत्री और उसके प्रेम करने वाले बहुत चिंतित और परेशान हुए। गांव में तभी एक फकीर आया और किसी ने कहा, उस फकीर को अगर लाएं, तो लोग कहते हैं, उसके आशीर्वाद से भी बीमारियां ठीक हो जाती हैं।'

वे उस फकीर को लेने गए। वह फकीर आया। उसने आते ही उस बादशाह को कहा, पागल हो? यह कोई बीमारी है? यह कोई बीमारी नहीं है। इसका तो बड़ा सरल इलाज है। 'वह बादशाह, जो महीनों से बिस्तर पर पड़ा था, उठकर बैठ गया। और उसने कहा, कौन–सा इलाज? हम तो सोचे कि हम गए! हमें बचने की कोई आशा नहीं रही है। 'उसने कहा, बड़ा सरल–सा इलाज है। आपके गांव में से किसी शांत और समृद्ध आदमी का कोट लाकर इन्हें पहना दिया जाए। ये स्वस्थ और ठीक हो जाएंगे। 'वजीर भागे, गांव में बहुत समृद्ध लोग थे। उन्होंने एक–एक के घर जाकर कहा कि हमें आपका कोट चाहिए, एक शांत और समृद्ध आदमी का। उन समृद्ध लोगों ने कहा, हम दुखी हैं। कोट! हम अपना प्राण दे सकते हैं; कोट की कोई बात नहीं है। बादशाह बच जाए, हम सब दे सकते हैं। लेकिन हमारा कोट काम नहीं करेगा। क्योंकि हम समृद्ध तो हैं, लेकिन शांत नहीं हैं।

वे गांव में हर आदमी के पास गए। वे दिनभर खोजे और सांझ को निराश हो गए और उन्होंने पाया कि बादशाह का बचना मुश्किल है, यह दवा बड़ी महंगी है। सुबह उन्होंने सोचा था, दवा बहुत आसान है। 'सांझ उन्हें पता चला, दवा बहुत मुश्किल है, इसका मिलना संभव नहीं है। 'वे सब बड़े लोगों के पास हो आए थे। सांझ को वे थके–मांदे उदास लौटते थे। सूरज डूब रहा था। गांव के बाहर, नदी के पास एक चट्टान के किनारे एक आदमी बांसुरी बजाता था। वह इतनी संगीतपूर्ण थी और इतने आनंद से उसमें लहरें उठ रही थीं कि उन वजीरों में से एक ने कहा, हम अंतिम रूप से इस आदमी से और पूछ लें, शायद यह शांत हो।'

वे उसके पास गए और उन्होंने उससे कहा कि तुम्हारी बांसुरी की ध्वनि में, तुम्हारे गीत में इतना आनंद और इतनी शांति मालूम होती है कि क्या हम एक निवेदन करें? हमारा बादशाह बीमार है और एक ऐसे आदमी के कोट की जरूरत है, जो शांत और समृद्ध हो। 'उस आदमी ने कहा, मैं अपने प्राण दे दूं। लेकिन जरा गौर से देखो, मेरे पास कोट नहीं है। 'उन्होंने गौर से देखा, अंधकार था, वह आदमी नंगा बांसुरी बजा रहा था।

उस बादशाह को नहीं बचाया जा सका। क्योंकि जो शांत था, उसके पास समृद्धि नहीं थी। और जो समृद्ध था, उसके पास शांति नहीं थी। और यह दुनिया भी नहीं बचायी जा सकेगी, क्योंकि जिन कौमों के पास शांति की बातें हैं, उनके पास समृद्धि नहीं है। और जिन कौमों के पास समृद्धि है, उनके पास शांति का कोई विचार नहीं है। वह बादशाह मर गया, यह कौम भी मरेगी मनुष्य की। इलाज वही है, जो उस बादशाह का इलाज था। वह इस मनुष्य की पूरी संस्कृति का भी इलाज है। हमें कोट भी चाहिए और हमें शांति भी चाहिए। अब तक हमारे ख्याल अधूरे रहे हैं। अब तक हमने मनुष्य को बहुत अधूरे ढंग से सोचा है और हमारी आदतें एक्सट्रीम पर चले जाने की हैं। मनुष्य के मन की सबसे बड़ी बीमारी अति है, एक्सट्रीम है।

कनफ्यूशियस एक गांव में ठहरा हुआ था। वहां किसी ने कनफ्यूशियस को कहा, हमारे गांव में एक बहुत विद्वान, बहुत विचारशील आदमी है। आप उसके दर्शन करेंगे? ' कनफ्यूशियस ने कहा, पहले मैं यह पूछ लूं कि आप उसे बहुत विचारशील क्यों कहते हैं? फिर मैं उसके दर्शन को जरूर चलूंगा। 'उन लोगों ने कहा, वह इसलिए विचारशील है कि वह किसी भी काम को करने के पहले तीन बार सोचता है – तीन बार!' कनफ्यूशियस ने कहा, वह आदमी विचारशील नहीं है। तीन बार थोड़ा ज्यादा हो गया। एक बार कम होता है, तीन बार ज्यादा हो गया। दो बार काफी है।

कनफ्यूशियस ने कहा, 'वह आदमी विचारशील नहीं है। तीन बार थोड़ा ज्यादा हो गया, एक बार थोड़ा कम होता है। दो बार काफी है। बुद्धिमान वे हैं, जो बीच में रुक जाते हैं। नासमझ अतियों पर चले जाते हैं।'

एक नासमझी यह है कि कोई आदमी अपने को शरीर ही समझ ले। दूसरी नासमझी और उतनी ही बड़ी नासमझी यह है कि कोई आदमी अपने को केवल आत्मा समझ ले। मनुष्य का व्यक्तित्व एक संयोग है। मनुष्य की संस्कृति भी एक संयोग होगी।

और हमें सीख लेना चाहिए। हमारे इतिहास की दरिद्रता और हमारे मुल्क की पराजय और पूरब के मुल्कों का पद-दलित हो जाना अकारण नहीं है; वह अति, धर्म की अति उसका कारण है। और पश्चिम के मुल्कों का आंतरिक रूप से दरिद्र हो जाना अकारण नहीं है, विज्ञान की अति उसका कारण है। भविष्य सुंदर होगा, अगर विज्ञान और धर्म संयुक्त होंगे।

यह जरूर स्पष्ट है कि विज्ञान और धर्म के संयोग में धर्म केंद्र होगा और विज्ञान परिधि होगा। यह स्पष्ट है कि विज्ञान और धर्म के मेल में धर्म विवेक होगा और विज्ञान उसका अनुचर होगा। शरीर मालिक नहीं हो सकता है, विज्ञान भी मालिक नहीं हो सकता है। मालिक तो धर्म होगा। और तब हम एक बेहतर दुनिया का निर्माण कर सकेंगे।

इसलिए यह न पूछें कि वैज्ञानिक युग में धर्म का क्या उपयोग है? वैज्ञानिक युग में ही धर्म का उपयोग है, क्योंकि विज्ञान एक अति है और वह अति खतरनाक है। धर्म उसे संतुलन देगा। और उस अति और उस खतरे से मनुष्य को बचा सकेगा।

इसलिए सारी दुनिया में धर्म के पुनरुत्थान की एक घड़ी बहुत करीब है। यह स्वाभाविक ही है, यह सुनिश्चित ही है, यह एक अनिवार्यता है कि अब धर्म का पुनरुत्थान हो, अन्यथा विज्ञान मृत्यु का कारण बन जाएगा। इसलिए मैं कहूं, विज्ञान के युग में धर्म की क्या आवश्यकता है, यह पूछना तो व्यर्थ है ही। विज्ञान के युग में ही धर्म की सर्वाधिक आवश्यकता है।'

## एक बार अन्यत्र ओशो से इसी तरह का सवाल पूछा गया कि आपकी नजर में विज्ञान का भविष्य क्या होगा? उन्होंने कहा-

'मैं बीसवीं सदी का व्यक्ति हूँ और पूरी तरह से जीवंत हूँ और मैं भविष्य की जरा भी चिंता नहीं करता, न ही मैं अतीत की कोई परवाह करता। मेरा सारा जोर वर्तमान पर है, क्योंकि सिर्फ वर्तमान ही का अस्तित्व है। अतीत अब रहा नहीं, भविष्य आया नहीं। दोनों ही का अस्तित्व नहीं है। वे पैगंबर पागल रहे होंगे, जो भविष्य की चिंता करते थे। वे हमेशा भविष्य की बात करते थे।

दुनिया में दो ही तरह के पागल लोग हैं, वे जो हमेशा अतीत की बात करते हैं, और थोड़े जो भविष्य की बात करते हैं। अतीत की बात करने वाले लोग इतिहासविद, पुरातत्वविद इत्यादि होते हैं। और जो लोग भविष्य की बात करते हैं वे पैगंबर, कल्पनाशील, कवि होते हैं। मैं दोनों ही नहीं हूँ।

मेरा सारा संबंध इस क्षण से है... अभी... यहाँ।

मैं पैगंबर नहीं हूँ लेकिन एक बात मैं कह सकता हूँ और इसका असल में भविष्य से कुछ लेना-देना नहीं है। यह अभी यहीं घट रहा है। लोग अंधे हैं इसलिए वे देख नहीं सकते। मैं देख

सकता हूँ, यह पहले ही हकीकत बन चुका है।

बड़ी से बड़ी बात जो हो रही है– जो बाद में समझ में आएगी, वह है धर्म और विज्ञान का मिलन, पूर्व और पश्चिम का मिलन, भौतिकता और आध्यात्मिकता का मिलन, बाह्य और अंतस का मिलन, अंतर्मुखी और बाह्यमुखी का मिलन, लेकिन यह अभी ही हो रहा है, यह भविष्य में विकसित होगा, लेकिन मेरा संबंध वर्तमान से है, और मैं बहुत प्रसन्न हूँ कि कुछ बहुत ही महान बात होने को है।

बीज अंकुरित हो चुका है। तुम इतने अतीत और भविष्य से बँधे हो कि वर्तमान में छोटे से अंकुरण को देख नहीं सकते, यहाँ, तुम्हारी आँख के नीचे... दो विपरीत ध्रुवों का मिलन हो रहा है।

विज्ञान अकेला आधा है और मानव को तृप्ति नहीं दे सकता। यह तुम्हें अधिक बेहतर शरीर दे सकता है, यह तुम्हें अच्छा स्वास्थ्य दे सकता है, लंबा जीवन दे सकता है। यह तुम्हें अधिक भौतिक सुविधाएँ दे सकता है, अधिक विलासिता। मैं इनमें से किसी के खिलाफ नहीं हूँ। मैं दुखवादी नहीं हूँ, मैं किसी भी तरह से उस तरह का मूर्ख नहीं हूँ, लेकिन यह सिर्फ बाहरी दुनिया की चीजें ही दे सकता है, जो कि अपने में सुंदर है। मैं चाहता हूँ कि सभी लोग सुंदर जीवन, आरामदायक जीवन जीएँ, अधिक विलासिता में, अधिक स्वस्थ, अधिक पोषित, अधिक शिक्षित, लेकिन सिर्फ यही सब कुछ नहीं है, यह सिर्फ जीवन की सतह भर है, केंद्र नहीं।

धर्म केंद्र उपलब्ध करवाता है, यह तुम्हें आत्मा देता है। इसके बिना विज्ञान लाश भर है, एक सुंदर लाश। तुम लाश को रंग–रोगन कर सकते हो। तुम लाश को धो सकते हो और सुंदर कपड़े पहना सकते हो, लेकिन लाश तो लाश ही है! और याद रखो यही बात धर्म के साथ भी लागू होती है। धर्म अकेला भी पर्याप्त नहीं है। अकेला धर्म तुम्हें भूत बना देता है। पवित्र भूत, लेकिन यह तुम्हें भूत बना देता है।

यदि धर्म भौतिक नहीं बनता है तो आत्मा–परमात्मा की बातें महज एक पलायन है। पूरब में यही हुआ है : हम आत्मा की बहुत ज्यादा बात करते हैं और हमें जो यथार्थ चारों तरफ से घेरे है, उसे भूल ही गए हैं। हम अंतर्मुखी हो गए हैं, स्व से अत्यधिक बँधे हुए। हम वृक्षों की, पहाड़ों की, और चंद्रमा और तारों की खूबसूरती के बारे में पूरी तरह से भूल गए। पूरब में मानवता कुरूप हो गई। इसके पास केंद्र है, लेकिन परिधि नहीं। सब कुछ केंद्र पर सिकुड़ गया।

पश्चिम के पास परिधि है पर केंद्र नहीं। लोगों के पास सब कुछ है, लेकिन कुछ महत्वपूर्ण से चूक रहे हैं। विज्ञान और धर्म एक हो रहे हैं। ये एक हो चुके हैं। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि वे एक होने वाले हैं, वे एक हो रहे हैं। सभी महान वैज्ञानिक– एडिंग्टन, प्लैंक, आइंस्टिन– विज्ञान जगत के उच्च क्षमता के लोग, इस बात के लिए सचेत हुए हैं कि अकेला विज्ञान काफी नहीं है। यहाँ कुछ और भी अधिक रहस्यपूर्ण है, जो वैज्ञानिक कार्य प्रणाली व संसाधनों से पकड़ नहीं सकते, कुछ भिन्न प्रयास की जरूरत होती है, ध्यानपूर्ण होश की जरूरत होती है। एडिंग्टन अपनी आत्मकथा में कहता है, 'जब मैंने अपने जीवन की शुरुआत एक वैज्ञानिक की तरह की तो मैं सोचता था कि दुनिया चीजों से चलती है, लेकिन जैसे मैं विकसित हुआ, वैसे–वैसे मैं अधिक से अधिक सचेत हुआ कि दुनिया में सिर्फ चीजें ही नहीं होती बल्कि विचार भी होते हैं।'

यथार्थ विचार के अधिक करीब है। यथार्थ की थाह नहीं पाई जा सकती, उसे नापा नहीं जा

सकता; वह कहीं अधिक अधिक रहस्यपूर्ण है। यथार्थ मात्र वस्तु नहीं बल्कि चेतना भी है। मेरी अपनी दृष्टि यह है कि हमें जोरबा दि बुद्धा का निर्माण करना होगा।

जो नया बुद्ध होगा वह जोरबा दि ग्रीक और गौतम बुद्ध का मिलन होगा। वह सिर्फ जोरबा नहीं हो सकता, और वह सिर्फ बुद्ध भी नहीं हो सकता।

और इसीलिए मेरा सारा प्रयास है जोरबा और बुद्ध के बीच सेतु निर्माण किया जाए, स्वर्ग सेतु, या इंद्रधनुषी सेतु, धरती और अनंत के बीच, इस किनारे और उस किनारे के बीच। यह मेरे आसपास घट रहा है! इसे घटते हुए कहीं और तुम देख नहीं सकते...

यहाँ सभी तरह के वैज्ञानिक हैं। यहाँ कई तरह के वैज्ञानिक हैं। यहाँ पर कवि और संगीतकार, चित्रकार हैं– सभी तरह के लोग, और ये सभी एक साथ एक महान प्रयास के लिए जुटे हैं : ध्यान के लिए। यहाँ सिर्फ एक मिलन का बिंदु है और वह है ध्यान। सिर्फ एक बिंदु पर वे मिलते हैं, अन्यथा सभी की अपनी वैयक्तिक यात्रा है। इस मिलन द्वारा अद्भुत विस्फोट संभव है। यह यहाँ घट रहा है। जिनके पास आँखें हैं वे यह घटते यहाँ देख सकते हैं।

पृथ्वी पर यही एक जगह है जहाँ दुनिया के सारे देशों के प्रतिनिधि मिलेंगे। हम यहाँ पर रूस के लोगों को चूक रहे थे और अब मैं यह बताते प्रसन्न हूँ कि रूस से भी लोग यहाँ आ गए हैं। सभी वर्ग यहाँ मिल रहे हैं, सभी धर्म यहाँ मिल रहे हैं। यहाँ पर छोटा सा संसार है, छोटी सी दुनिया, और हम सभी यहाँ पर मानव की तरह मिल रहे हैं। कोई ईसाई नहीं है, हिंदू नहीं है या मुसलमान नहीं है। कोई नहीं जानता कि कौन वैज्ञानिक है, कौन संगीतकार है, कौन चित्रकार है, कौन प्रसिद्ध अभिनेता है। कोई कहता भी नहीं...।

एक पूरे तरह का नया विज्ञान निश्चित ही आने वाला है, यह दोनों एक साथ होगा : धर्म और विज्ञान, और तब ही यह पूर्ण हो सकता है। यह अंतस और बाह्य दोनों का विज्ञान होगा। सच तो यह है कि धर्म के दिन पूरे हुए, सिर्फ विज्ञान काफी है, एक ही शब्द से काम चल जाएगा। 'विज्ञान', सुंदर शब्द है, इसका मतलब है जानना, विवेक।

विज्ञान को दो श्रेणियों में बाँटना है : विषयगत विज्ञान– रसायनशास्त्र, भौतिकशास्त्र, गणित, इत्यादि– इत्यादि और आत्मपरक विज्ञान, और तब धर्म और विज्ञान को बाँटने की जरूरत नहीं है। और धर्म और विज्ञान का मिलन पहली बार पूर्ण मानव का निर्माण करेगा। अन्यथा मानवता आज तक खंडित रही है, बँटी हुई, विक्षिप्त, विभाजित रही है।

मैं संपूर्ण मानव के लिए हूँ, क्योंकि मेरे अनुसार संपूर्ण मानव ही पवित्र मानव हैं।'

# 19

# शिकायत-रहित शांति और संतोष

प्रश्न– आज एक प्रश्न है, श्रीमती सुमनलता वर्मा का। कहती हैं कि मैं ध्यानी-ज्ञानी प्रवृत्ति की महिला नहीं हूं, न पूजा-पाठ करती, न व्रत-उपवास आदि। न ही ग्रंथों में या गुरुओं में मेरी कोई रुचि है, मेरा मन प्रायः शांत व प्रसन्न रहता है। मैं एक साधारण गृहणी हूं, एवं अपने परिवारजनों के साथ प्रेमपूर्वक रहना ही ठीक समझती हूं। मुझे अपना जीवन बड़ा प्यारा लगता है, सदा प्रभु की कृपा का अहसास होता है। यद्यपि मैंने ईश्वर सें कभी प्रार्थना नहीं की, न कोई मनौती मांगी। मेरे अंदर स्वर्ग व आवागमन से मुक्ति की चाहत भी नहीं है। जीवन में मेरा कोई विशेष लक्ष्य भी नहीं है, बस अपने आप में संतुष्ट-सी हूं। केवल एक सवाल आपसे पूछना चाहती हूं कि क्या उपरोक्त कारणों से परमात्मा मुझसे नाराज हो गया होगा?

ओशो शैलेन्द्र– सुमनलता वर्मा, परमात्मा तुमसे नाराज नहीं, परमात्मा तुम जैसे लोगों से ही प्रसन्न होता है। तुम सौभाग्यशाली हो!

मैंने सुना है कि एक आस्तिक और नास्तिक आमने–सामने हीं रहा करते थे। संयोग की बात... दुर्घटनावश भूकंप से दोनों की मृत्यु भी एक साथ हुई। जब दोनों परलोक पहुंचे, और यमदूत उस आस्तिक को नरक ले जाने लगे, और नास्तिक को स्वर्ग की तरफ; तब आस्तिक आत्मा को बड़ी बेचैनी हुई। ऐसा लगा कि कुछ भूलचूक हो रही है। उसने यमदूत से कहा– आपके दस्तावेज, आपके खाता–बही में कहीं कुछ गलती हो गयी है। उस नास्तिक को आप स्वर्ग ले जा रहे हो, और मुझे नरक ले जा रहे हो! मैं जिंदगी भर भगवान का भजन करता रहा, सुबह शाम दो–दो घंटे कीर्तन किया करता था, हर रविवार को अखण्ड रामायण तथा हर महीने सत्यनारायण का पाठ करवाता था। मन ही मन दिन भर राम–राम राम–राम जपता रहता था। तुम मुझे नरक ले जा रहे हो..... कुछ भूलचूक हो गई, लगता है। उस नास्तिक को जाना चाहिए नरक, मुझे स्वर्ग जाना चाहिए।

यमदूतों ने कहा– नहीं, कुछ भूलचूक नहीं हुई है, लेकिन वास्तविकता जाननी हो तो खुद ईश्वर के पास चलो। जिद्दी आस्तिक ने कहा– प्रभु के सामने मुझे प्रस्तुत किया जाए, मैं उन्हीं से पूछना चाहता हूं। उसे ले जाया गया।

ईश्वर ने बहुत गुस्से में उसकी तरफ घुर्राकर देखा। उसने कहा कि मैं आस्तिक हूं, जिंदगी भर राम–राम–राम जपा हूं। इतने अखण्ड कीर्तन किए, पूजा–प्रार्थनाएं कीं, आप मुझसें नाराज क्यों हैं? यूं घुर्राकर क्यों देख रहे हैं?

ईश्वर ने कहा– दुष्ट प्राणी, तू जिंदगी भर मेरे कान खाता रहा। तूने मेरी नींद हराम कर दी। विक्षिप्त जीव, तू मुझे भी विक्षिप्त करने पर उतारू था।

अब सोचो... तुम किसी आदमी का नाम रटते रहो, या कोई तुम्हारे पास में बगल में बैठा बड़बड़ाता रहे– सुमनलता वर्मा, सुमनलता वर्मा, सुमनलता वर्मा... और लाउडस्पीकर लगाकर चिल्लता रहे सुमनलता वर्मा, सुमनलता वर्मा... तुम उससे खुश होओगी कि नाराज होओगी?

निश्चितरूपेण, परमात्मा आस्तिकों से प्रसन्न नहीं हो सकता; तथाकथिक आस्तिक जो क्रिया–काण्ड कर रहे हैं इन के पागलपन से नाराज ही होगा। इससे अच्छे तो बेचारे नास्तिक हैं, कम से कम ईश्वर को सता तो नहीं रहे। ईश्वर से प्रार्थना तो नहीं कर रहे; कि हमको यह दे दो, कि हमको वह दे दो, उसे सलाह तो नहीं दे रहे कि हे प्रभु ऐसा कर दो, वैसा कर दो।

मैंने सुना है कि जब अस्तित्व को बनाया परमात्मा ने, तो यहीं पृथ्वी पर रहा करता था। पेड़–पौधे बनाए, जानवर बनाए, पक्षी बनाए, मछलियां बनायी, तब तक बड़ी

शांति थी, फिर एक दिन परमात्मा ने मनुष्य को बनाया और उस दिन से भारी उपद्रव शुरू हो गए। जो देखो वहीं चला आ रहा है कुछ शिकायत करने! कोई कह रहा कि हे प्रभु आज धूप निकलवा दो मुझे कपड़े सुखाने हैं। कोई कह रहा कि आज पानी गिरवा दो हमने अभी बीज बोए हैं खेत में। सब कंटाडिक्ट्री बातें...एक-दूसरे की विपरीत बातें...ईश्वर चाहे भी तो कैसे उनकी इच्छा पूरी करे?

दो आदमी आ गए कि हमारा मुकदमा चल रहा है। दोनों मांग रहे कि हमें जितवा दो। दो में से एक ही जीत सकता है; दो कैसे जीतेंगे? परमात्मा बहुत परेशान हो गया। फिर धीरे-धीरे मनुष्य जाति में नेता पैदा हो गये। और फिर तब से बहुत उपद्रव, हड़ताल, घेराव और नारेबाजी होने लगी, कुछ तपस्वी आस्तिक अनशन पर बैठन लगे, ईश्वर के घर के सामने। ईश्वर बहुत चिंतित हो गया, उसने देवताओं की एक मीटिंग बुलवाई और उनसे कहा कि कुछ उपाय करो मैं कहीं ऐसी जगह छिप जाना चाहता हूं जहाँ आदमी न पहुंच सके। एक देवता ने सलाह दी- प्रभु, आप प्रशांत महासागर की गहराई में शांति से बस जाएं। पांच मील गहरा समुन्दर, आदमी वहाँ कैसे जाएगा? ईश्वर ने अपनी आंखें बंद कीं, दिव्य-दृष्टि खोली, भविष्य की तरफ देखा और उस देवता से कहा- तुम जानते नहीं, उन्नीसवीं सदी आते-आते ये लोग पनडुब्बियां बना लेंगे और अपने कैमरे, लाईट इत्यादि लिए हुए प्रशांत महासागर में पहुंच जाएंगे, वे मुझे वहाँ भी शांतिपूर्वक न रहने देंगे। कुछ और सोचो।

एक देवता ने कहा कि प्रभु, आप एवरेस्ट पर जाकर विराजमान हो जाएं। वहाँ आदमी कैसे पहुंचेगा? परमात्मा ने आंखें बंद कीं और कहा- नहीं, नहीं, तुम जानते नहीं। तेनसिंग और हिलेरी नामक दो आदमियों को मैं देख रहा हूं, बीसवीं सदी के मध्य में वे पहुंच जाएंगे। और एक बार जहाँ पैदल आदमी पहुंच गया फिर देर न लगेगी, जल्दी ही भीड़भाड़ हो जाएगी.....हेलीकाप्टर, हवाई जहाज....फिर सारा उपद्रव शुरू हो जाएगा।

किसी ने कहा आप चंद्रमा पर चले जाओ, परमात्मा ने फिर आंखें बंद करके दिव्य-दृष्टि से देखा कि आर्मस्ट्रांग नाम का आदमी चंद्रमा पर उतरकर अमेरिका का झंडा गाड़ रहा है। भगवान ने घबराकर कहा- मारे गए! अमेरिकन जहाँ पहुंच गए, वहाँ रसियन पीछे नहीं रहने वाले; वे भी पहुंच जाएंगे। वे अपना झंडा गाड़ेंगे। फिर धीरे-धीरे वही उपद्रव शुरू हो जाएगा। इससे भी मामला हल नहीं होगा इससे समस्या थोड़ी टल जाएगी, बस। कुछ और विधि सोचो।

तब एक बूढ़े देवता ने परमात्मा के कान में आकर कुछ फुसफुसाया। परमात्मा बहुत प्रसन्न होकर बोला- ये तरकीब बिल्कुल ठीक! यहां आदमी नहीं जाएंगे।

और तब से परमात्मा वहीं विराजमान है।

जानते हो वह जगह कौन सी है जहाँ परमात्मा विराजमान है? उस बूढ़े देवता ने कहा था– प्रभु, आप मनुष्य की अंतर–आत्मा में, उसके हृदय में ही छुप जाएं। उस तथाकथित बुद्धिजीवी जानवर को ख्याल ही नहीं आएगा स्वयं के भीतर जाने का।

सुमनलता, तुम जिन्हें आस्तिक कहती हो, वे सब भी बाहर भटक रहे हैं– मंदिर–मस्जिद, काबा–काशी, तीर्थ–यात्रा, गंगा–स्नान, मूर्ति–पूजा, शास्त्र–अध्ययन.. ..ये सब बाह्य बातें हैं। यज्ञ–हवन, क्रिया–काण्ड, त्याग–तपश्या, मंत्र–जपादि सब बाहरी बातें हैं। उनकी आस्तिकता काम आने वाली नहीं; और वे परमात्मा को कभी न पा सकेंगे। तुम जैसे लोग ही प्रभु को पा सकते हैं। याद रखना जो लोग शांत हैं, संतुष्ट हैं समझदार हैं, स्वस्थ हैं, समृद्ध हैं, सुखी हैं और संवेदनशील हैं ये सात शर्तें मैं तुमसे कहता हूं– 1.स्वस्थ, 2.समृद्ध, 3.सुखी, 4.शांत, 5.समझदार, 6.संतुष्ट और 7. संवेदनशील। संवेदनशील से मेरा अर्थ है कि प्रेमपूर्ण, करूणावान, जागरूक। ये सात शर्तें जिसने पूरी कीं, उसके लिए द्वार खुल जाता है समाधि का। 8.आठवां स– समाधि का। और फिर 9.नवां स– संबोधि का। अंततः 10.दसवां स– शून्यता का, निर्वाण का। वहीं है मंजिल, जीवन का परम लक्ष्य! लेकिन जो लक्ष्य लेकर चलते हैं वे चूक जाते हैं। उसे पाने की वासना भी उसे पाने में बाधा है।

तुम्हारे ही जैसे लोगों का जरूरत है ओशोधारा के समाधि–कार्यक्रमों में। वे लोग जो भीख मांगने आते हैं कि हमें स्वास्थ मिल जाए, कि हमारी पदोन्नति हो जाए, या आमदनी बढ़ जाए, कि पत्नी बीमार है वो ठीक हो जाए, लड़के की नौकरी लग जाए, कि बेटी का विवाह हो जाए.... इन भिखारियों से परम सम्राट का मिलन न हो सकेगा, कभी भी न हो सकेगा।

याद रखना, परमात्मा समूची सृष्टि का मालिक है, सम्राट है। सम्राट से सम्राट की ही मुलाकात हो सकती है, भिखमंगों की नहीं। इसलिए प्रार्थना करने वालों, मांगने वालों को वहाँ कोई प्रवेश नहीं है। पंडित–पुरोहित का कोई स्थान वहाँ नहीं है। तुम जैसे लोग ही चाहिए। लेकिन एक मुश्किल है, अक्सर इस प्रकार के लोग धर्म में उत्सुक नहीं होते। मैं तुम्हें निमंत्रित करना चाहूंगा ध्यान–समाधि या भक्ति–समाधि कार्यक्रम में एक बार जरूर आओ, क्योंकि तुम बहुत ऊंची उड़ान ले सकोगी। तुम्हारे मन में कोई धारणाएं नहीं हैं, तुम्हारे मन में कोई मांग नहीं है, कोई शिकायत नहीं है, कोई प्रार्थना नहीं है। ऐसे ही लोग परमज्ञान को प्राप्त कर सकते हैं। मैंने कभी एक गीत लिखा था, वह तुम्हारे प्रश्न से मिलता–जुलता है।

यह मेरा सौभाग्य कि अब तक मैं जीवन में लक्ष्यहीन हूं....मैंने अपने जीवन में कभी कोई उद्देश्य अनुभव नहीं किया। बस जीवन का आनंद है, मौज है, मस्ती है। कुछ पाना नहीं है, कुछ होना नहीं है, कहीं जाना नहीं है। वह गीत सुनो–

यह मेरा सौभाग्य कि अब तक मैं जीवन में लक्ष्यहीन हूं।
मेरा भूत–भविष्य न कोई, वर्तमान में चिर–नवीन हूं।
कोई निश्चित दिशा नहीं है, मेरी चंचल गति की बंधन।
कहीं पहुंचने की न त्वरा में, आकुल–व्याकुल है मेरा मन।
खड़ा विश्व के चौराहे पर अपने में हीं सहज लीन हूं।
यह मेरा सौभाग्य कि अब तक मैं जीवन में लक्ष्यहीन हूं।

तुम अपनी लक्ष्यहीनता को, अपनी संतुष्टि को सौभाग्य समझो। तुम बहुत बड़भागी हो, कहती हो स्वर्ग प्राप्ति की या आवागमन से मुक्ति की आकांक्षा भी नहीं। असल में कामना ही तो बंधन है चाहे वह स्वर्ग पाने की ही क्यों न हो! चाहे वह आवागमन से मुक्ति की ही आंकाक्षा क्यों न हो! आकांक्षा मात्र बंधन है। तुम्हारे भीतर वह आंकाक्षा भी नहीं। निश्चित रूप सें परम सौभाग्य घटा है– ऐसे शांत, संतुष्ट, समझदार लोग समाधि में बहुत तीव्र गति से आगे बढ़ सकते हैं।

जो लोग कुछ पाना अथवा बनना चाहते हैं, किसी चमत्कार की आशा करते हैं, गुरु का आशीर्वाद मांगने आते हैं, पता नहीं किन–किन क्षुद्र कारणों से लोग मंदिरों में जाते हैं! उन लोगों की अध्यात्म में कोई प्रगति संभव नहीं। पूजा–पाठ लोग करते हैं बहुत तुच्छ कारणों से। उनकी मांगें सांसारिक होतीं हैं। और याद रखना सारी मांगें सांसारिक ही होतीं हैं, आध्यात्मिक मांग जैसी कोई चीज नहीं होती। तो मोक्ष की भी अगर कामना करो, तो वह कामना भी बंधन है।

सुमनलता, अपने आप को सौभाग्यशाली समझना, बस थोड़ी–सी और संवेदनशीलता बढ़ जाए! भीतर हृदय की गुफा में विराजमान.... वह जो अंतर्आत्मा में संगीत की तरह छुपा परमात्मा है, उससे मिलन हो जाएगा। क्योंकि तुम एक सम्राट की तरह भीतर जाओगी, कुछ मांगने नहीं, कुछ शिकायत करने नहीं। समान का ही समान से मिलन हो सकता है। पानी में पानी मिल जाता है, पानी में घी नहीं मिल सकता। सच्चिदानंद से वही मिल पाएगा जो स्वयं आनंदमय है।

परमात्मा छुप गया है शिकायती आदमियों से परेशान होकर। दुखियारों से कौन मिलना चाहता है? जो लोग सुखी, शांत, संतुष्ट, अहोभाव से भरे हैं उनसे वह परमानंदरूपी

ईश्वर भी मिलने को आतुर है। शायद इसीलिए तुम्हारे मन में यह सवाल भी उठा और तुमने मुझसे पूछा....प्रभु ने तुम्हें याद किया है! तुम तो नाचो, गाओ, उत्सव मनाओ–

न जाने कौन बगियों से, हवा लहराती आई है।
कहूँ क्या कौन कुसमों की, महक यह साथ लाई है।।
ये रस की धार हर जगह है, सांसों में फिजाओं में;
हर पेड़ों की छांवों में, कोयल की सदाओं में।
अरे ये सब दिशाओं में, वहीं भीतर, वहीं बाहर;
वहीं चहुँ ओर छाई है।
अनहद की गूंज सर्वव्यापी, बस्ती में निर्जन में;
प्रेम से पूर्ण हृदयों में, अहम् से शून्य मन में।
अरे ये सृष्टि के कण–कण में, कोई अज्ञेय स्वर लहरी;
अनोखा गीत गायी है।
ये मीठी धुन अनजानी सी, लगती है पहचानी;
कभी आकाश वाणी सी, तो कभी अन्तर्वाणी।
यही ईश्वर की वाणी भी, यही शाश्वत यही अमृत;
प्रभु संदेशा लाई है।

नहीं, परमात्मा तुमसे जरा भी नाराज नहीं; परमात्मा बहुत प्रसन्न है। प्रसन्नता को प्रभु–संदेशा समझो। न जाने कौन बगियों से, हवा लहराती आई है... अब बस थोड़ा–सा तुम अतर्मुखी होने की कला में पारंगत हो जाओ, और तुम्हारे लिए कठिन न होगा, अन्य लोगों की तुलना में बहुत सरल–सुगम–सहज होगा। बस जरा–सी कोशिश, लगभग प्रयास रहित प्रयास, और समाधि फलने लगेगी। ये मीठी धुन अनजानी सी, लगती है पहचानी; कभी आकाश वाणी सी, तो कभी अन्तर्वाणी। यही ईश्वर की वाणी भी, यही शाश्वत यही अमृत; प्रभु संदेशा लाई है।

जो सहज हो जाए, वहीं तो सहज योग है।

धन्यवाद।

# 20

# राग-विराग के मध्य में

**प्रश्न– आज का सवाल है, कि कभी मैं एक अति महत्वाकांक्षी युवक था। हर क्षेत्र में जीतना चाहता था, संसार को बदलना चाहता था। लोगों ने व्यंग्य से मेरा नाम सिकंदर रख दिया था। अब जवानी का जोश ठंडा पड़ गया है, 55 साल का हताश बूढ़ा हो गया हूं। अंदर से हिम्मत टूट गई है। घर वाले कटाक्ष करते हैं कि रस्सी जल गई मगर ऐंठ नहीं गई है। मुझे भी प्रतीत होता है कि जगत से राग तो छूटा है परंतु वैराग्य अभी भी नहीं जन्मा है। मैं क्या करूं?**

ओशो शैलेन्द्र– पूछा है क्रांतिकुमार अग्रवाल ने। तुम एक संक्रमण के काल से गुजर रहे हो। दुनिया में सब चीजें धीरे-धीरे घटित होती हैं। दृष्टिकोण भी क्रमशः बदलता है। कहते हो जगत से राग तो छूट रहा है किंतु अभी भी वैराग्य नहीं जन्मा; एक ट्रांजिसनल फेज से यात्रा हो रही है। मोह छूट रहा है, लेकिन अभी निर्मोही अवस्था आई नहीं। जैसे रात गुजर गई लेकिन अभी सुबह हुई नहीं। भोर की संक्रमण बेला है, इसका भी स्वागत करो। शीघ्र ही यह वक्त भी गुजर जाएगा, सूरज उगने को है। लक्षण शुभ हैं। 55 साल के हो गए, जवानी का जोश, बचपन के खिलौने विदा हुए, निश्चितरूपेण परिपक्वता आई है। आगे और परिपक्वता आएगी।

कितने हजारों लोग दुनियां में हैं जो 55 के क्या 110 साल के हो जाएं.....फिर भी समझ पैदा नहीं होती, खिलौनों में ही उलझे रहते हैं। हाँ, खिलौने बदल लेते हैं– बचपन के खिलौने अलग प्रकार के थे, जवानी के खिलौने अलग हो गए, और बुढ़ापे के खिलौने जरा भिन्न तरह के हो गए। बचपन में गुड्डा–गुड्डियों से खेलते हैं। यौवन में गुड्डे–गुड्डियों की जगह प्रेमी–प्रमिकाएं स्थान ले लेते हैं। शिक्षा, धन, पद, यश, राजनीति, ज्ञान, विज्ञान, कला आदि भी जवानी के खिलौने हैं। फिर बुढ़ापे के खिलौने शुरू हो जाते हैं, लोग झूठे धर्मों में उत्सुक हो जाते हैं। कोई शास्त्र अध्ययन कर रहा है कोई मूर्ति पूजा कर रहा है। भांति–भांति के क्रिया–कांडों में उलझा है.... गुड्डे–गुड्डियों की जगह देवी–देवताओं के खिलौनों ने ले ली।

हर उम्र के अलग–अलग खिलौने हैं। जब परिपक्वता आनी शुरू होती है तब खिलौने छूटने शुरू होते हैं। तुम कहते हो मैंने दुनिया को जीतना और बदलना चाहा था, अब हार महसूस हो रही है, आशा टूट गई है। अच्छा हुआ, आशा और निराशा दोनों के पार तीसरी अवस्था भी है, अंततः वहाँ पहुंचना है। लेकिन इस आशा का टूटना भी विकास की प्रक्रिया का हिस्सा है। इसके लिए भी प्रभु कि प्रति धन्यवाद से भरो.... आशा न टूटे तो आदमी कभी जागे ही न! आशा टूटनी ही चाहिए किसी शायर ने कहा है–

सिर घूमने लगा है, मेरा नाव खेते–खेते,<br>
थक गया हूं खुद को, ये फरेब देते–देते।<br>
घबरा रहा हूं मैं अब, जिंदगी के नाम से<br>
दम टूटने लगा है, मेरा सांस लेते लेते।

तुम किस्मत वाले हो, समझ विकसित हो रही है लाखों लोग बिना समझ के ही जिए चले जाते हैं। अभी तक तुमने दुनियां जीतने की कोशिश की थी, लोगों ने सिकंदर नाम रख दिया था। अब जरा दूसरा उपाय करके देखो– थोड़ा हार के भी देखो, अभी सुन रहे थे न, मा ओशो प्रिया का गाया हुआ गीत–

'तुम मुझे जीत लो मैं हार जाऊं;<br>
हार कर प्रीतम तुम्हारा प्यार पाऊं।<br>
प्रेम की बाजी अनोखी, हारने में जीत है।<br>
सागर और शबनम सरीखी, ये हमारी प्रीत है।<br>
बूंद सी मिट के सागर में समाउंफ।<br>
हार के प्रीतम तुम्हारा प्यार पाउंफ।<br>
कब से धीरज धरे खड़ी हूं, सीमा मेरी तुम हर लो।<br>
हे असीम प्यारे प्रीतम अब तो मुझ को तुम वर लो।<br>
नित यही प्रार्थना मैं हारी जाउंफ।

हार के प्रीतम तुम्हारा प्यार पाउंफ।
मेरे होने से है जुदाई, मिलन तो खुद के मिटने में है।
फूल के खिलने की संभावना बीज के पूरे गलने में है।
भक्ति के भूमि में मर हीं जाउंफ।
हार के प्रीतम तुम्हारा प्यार पाउंफ।'

परमात्मा के सामने हार जाओ, अस्तित्व के सम्मुख समर्पण करो। तुमने खूब लड़के और संघर्ष करके तो देख लिया, उससे मिला क्या? हताशा हीं हाथ आई! एक दूसरा उपाय करके देखो– चीन के महासंत लाओत्से ने कहा है कि कोई मुझे कभी हरा न सका क्योंकि मैंने कभी जीतना हीं न चाहा। मैं किसी सभा में गया तो उस जगह बैठा जहाँ लोग जूते उतारते हैं। कभी मुझे किसी ने अपमानित करके सभा से बाहर न निकाला। और कहाँ बाहर निकालेगा कोई?

ईसा मसीह ने कहा है– धन्य हैं जो अंतिम हैं, वे ही प्रभु के मंदिर में प्रवेश पाने के अधिकारी होंगे। अंतिम होने से अर्थ जो समर्पित भाव से जीं रहे हैं। जिन्होंने जीत की आकांक्षा छोड़ दी। वह जीत की आकांक्षा हीं हमारा अहंकार है कि प्रथम होने की दौड़ में मैं दूसरों से आगे निकल जाऊं! दूसरों से तुलना, दूसरों से प्रतिस्पर्धा....वहीं तो सारा रोग है, वहीं तो हमारी व्याधि है। वह छूट रहीं है, शुभ हो रहा है। अब इंतजार करो, प्रतीक्षा करो एक नए सूर्योदय की– भक्तिभाव से जीने की, प्रेम व अहोभाव से जीने की।

दो ही उपाय हैं दुनिया में एक है संघर्ष, लड़ना, जीतना; वह हिंसा का तरीका है। और दूसरा प्रेम का, भक्ति का, समर्पण का; हारने का तरीका है। अब हारना सीखो। जीत–जीत के कुछ हाथ न आया.... 'दम टूटने लगा है मेरा, सांस लेते–लेते।' अब दूसरे मार्ग पर मैं तुम्हें आश्वासन देता हूं कि जिंदगी में फिर बहार आएगी। और ऐसी बहार आयेगी कि सारा रंग हीं बदल जाएगा। नहीं, हताश न हो और नई आशा से भरो। अच्छा हुआ, संसार से राग छूटने लगा। करीब–करीब छूट हीं गया। राग और विराग के पार एक तीसरी अवस्था है– वीतरागता की। उस तरफ तुम्हारी गति हो रहीं है।

अपने तो फिर अपने हैं, गैरों का चलन बदला;
अंदाज–ए नजर बदला, उनवाने सुखन बदला।

जरा देखने का तरीका बदलो। अंदाजे–नजर बदलो। गौतम बुद्ध उसे कहते हैं– सम्यक्दृष्टि को उपलब्ध करो। और तुम पाओगे सारी दुनिया बदल गई, तुम्हारी आंखें क्या बदल गईं! तुम्हारे देखने का ढंग बदल गया तो सारी सृष्टि परिवर्तित हो जाएगी। दृष्टि ही सृष्टि है। तुम संघर्ष की भाषा में सोच रहे थे, जीत की भाषा में सोच रहे थे और हार गए।

याद रखना, भारत में एक बड़ा अच्छा शब्द है 'हार'। इसके दो मतलब हैं। पहला– पराजय, और दूसरा– फूलों की माला को भी हम हार कहते हैं। और कितने मजे की बात है

जब कोई जीत जाता है, सफलता पाता है, तब हम उसे फूलों का हार पहनाते हैं– 'ये लो हार!' यह बड़ा प्रतीकात्मक है कि हर जीत में हार छिपी हुई है, तुम देखो चाहे न देखो। बड़ा अच्छा प्रतीक बनाया है कि जीतने और सफल होने पर हम उसे हार पहना देते हैं। समझ सको तो उसी समय समझ जाओ कि सब जीतें हार हैं। सब सिकंदर–हिटलर हार गए। कोई दुनिया से जीत के न जा सका। यहाँ जीत होती ही नहीं।

यहाँ जीतते हैं लाओत्से जैसे लोग, कबीर और रैदास जैसे मुक्त–पुरुष। यहां जीतते हैं मीराबाई और सहजोबाई जैसी मुक्त–नारियां। जिन्होंने कभी जीतना चाहा ही नहीं। बुद्ध और महावीर अकारण राजमहल छोड़कर नहीं चले गए। चुपचाप रणभूमि से हट गए। जिन्होंने प्रभु के चरणों में अपने आप को समर्पित कर दिया फिर सारी दुनिया उनके लिए बदल जाती है। सबके लिए वहीं रहती है, फिर भी दुनिया उनके लिए बदल जाती है।

अपने तो फिर अपने हैं गैरों का चलन बदला।
अदांजे–नजर बदला उनवाने–सुखन बदला।
दीवाने तो दीवाने, खोए गए फरफाने,
यूं फस्ले–बहार आई यूं रंगे–चमन बदला।
फिर दौर में सागर है फिर मौज में सहबा है,
तकदीरे–चमन बदली, आईने–चमन बदला।
जो कतरा है मोती है, जो जर्रा है जो नाफा है।
मएयारे–नजर बदला, हर नक्से–कुहन बदला।

जब तुम्हारे भीतर प्रेम घना होने लगता, तो फिर यहीं जगत परमात्मा हो जाता है। फिर वह जो राग था, मोह था, वही भक्ति में रूपांतरित हो जाता है।

मयारे नजर बदला, हर नक्से कदम बदला।
अपने तो फिर अपने है गैरों का चलन बदला।
कोई गैर लगता ही नहीं। सभी अपने हो जाते हैं।

अंदाजे नजर बदला, उन्वाने सुखन बदला।....एक ऐसी बहार भी आती है। उसके आने के दिन नजदीक आ रहे हैं। तुम्हारे प्रश्न से स्पष्ट है कि एक परिपक्वता, एक मेच्योर्टी, एक नई समझ का जन्म हो रहा है। तुम अगर इसे ठीक से पहचान लो तो और बदलाहट की गति तीव्रतर हो सकती है। रूपांतरण और जल्दी हो सकता है। बहुत सुंदर हो रहा है.... कहते हो जगत से राग तो छूटा है किंतु वैराग्य अभी नहीं जन्मा। सूर्योदय से पहले जैसे प्राची पर लाली छा जाती है, वैसी अवस्था में हो– ट्रांजिसनल फेज में। अपने सौभाग्य पर नाज करो। शीघ्र ही सूर्योदय होने को है। फिर ध्यान और समाधि में यात्रा हो सकेगी। फिर प्रेम, भक्ति और श्रद्धा में डूबना हो सकेगा। उसके आसार स्पष्ट नजर आ रहे हैं।

मैंने सुनी है एक कहानी– एक अमीर कृपण आदमी को पता चला कि कहीं एक

आदिवासियों का गांव हैं वहाँ पर जमीन बहुत सस्ती, बहुत ही सस्ती मिलती है! लोग बिल्कुल सीधे–सादे हैं। बस, सौ रूपये दो, और दौड़कर दिन भर में जितनी जमीन घेर लो; वह पूरी जमीन तुम्हारी हो जाती है। उसने सोचा यह तो बहुत ही सस्ता सौदा है– मात्र सौ रूपये में। मैं तो पचास–साठ एकड़.....अरे सौ एकड़ जमीन घेर लूंगा। गया वह सौ रूपये लेकर। वास्तव में, जो सुना था, वह सच निकला। सूर्योदय होने पर गांव के सरपंच ने कहा, अब दौड़ना शुरू करिये, सूर्यास्त होने तक वापिस आप इसी बिंदु पर आ जाइयेगा जहाँ से दौड़ना शुरू कर रहे हैं। वर्तुल पूरा होना चाहिए, वरना हार जाएंगे। जितनी जमीन आप घेर लेंगे वह आप की हो जाएगी।

उस अमीर कंजूस ने दौड़ना आरंभ किया। जान दांव पर लगाकर जैसे–जैसे भागता गया, वैसे–वैसे लोभ भी बढ़ता गया कि और बड़ा घेरा बनाउंफ, और ज्यादा जमीन ले लूं। सौ ही क्यों, दो–चार सौ एकड़ जमीन ले लूं। दौड़ता गया...दौड़ता गया...बड़ी फुर्ती से, पूरा दम लगाकर! जब दोपहर हो गई तब उसे लगा कि अब वापिस लौटना चाहिए। फिर उसने लौटना शुरू किया। लेकिन अब तक थक भी बहुत गया था, गति पहले जैसी न रही। भूखा–प्यासा भी था। पसीना–पसीना, थका–मांदा....अब उतनी रफ्तार न बची।

फिर शाम ढलने लगी। थकान बढ़ने लगी। लौटते–लौटते जब वह प्रस्थान बिंदु से केवल दस फुट दूर रह गया था...बेचारा तभी ठोकर खाकर गिर पड़ा। बुरी तरह थक गया था, गिरने से टांग की हड्डी टूट गई। उसने बहुत कोशिश की, कि किसी तरह दस फुट और खिसक जाए....क्योंकि बस चंद मिनिटों में ही सूरज डूबने को था, लेकिन अब हिम्मत न बची थी। घबराहट और तनाव में उसका ब्लड प्रेसर बढ़ गया और उसे दिल का दौरा पड़ गया। बेचारा उस बिंदु को न स्पर्श कर सका, जहाँ से वह चला था। वह चालाक अमीर सोच रहा था कि वह आदिवासियों को धोखा दे रहा है। वे आदिवासी और उनका सरपंच खड़े–खड़े बहुत हंस रहे थे। वे बोले– हम हजारों लोगों से सौ–सौ रुपये लेकर अब तक लाखों कमा चुके हैं। तुम हमें सीधा–सादा न समझो। आज तक कोई भी जमीन नहीं घेर पाया। क्योंकि लोभ और कामना का विस्तार होता जाता है, मूर्च्छा में वासना का अंत आता ही नहीं।

तुम सौभाग्यशाली हो क्रांतिकुमार अग्रवाल कि मूर्च्छा टूट रही है। समझ पैदा हो रही है। अब ध्यान में, धर्म में तुम्हारी गति हो सकेगी।

धन्यवाद।